गीता-दर्शन

[४]

प्रवचनकार

अनन्तश्री स्वामी

अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री

श्रीमती सरला वसन्तकुमार बिरला

भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर प्राप्त कराये गये कागजपर
मुद्रित

गीता-दर्शन

[४]

प्रवचनकार
अनन्तश्री स्वामी
अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री
श्रीमती सरला वसन्तकुमार बिरला

शुभाशीर्वाद

विरला-परिवारका मानवताकी सेवामें विशेष योग रहा है। इसके द्वारा भारत वर्षके सर्वतोमुखी विकासमें प्रशंसनीय सहायता प्राप्त हुई है। ईश्वर-भक्ति, धर्म, दरिद्रनारायणकी उन्नति, विद्या, उद्योग, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं आध्यात्मिक प्रचार-प्रसारमें इसकी सेवा अनुपम है।

श्रीघनश्यामदास विरलाके पुत्र एवं पुत्रवधू श्रीमती सरला वसन्तकुमार विरला अनेक वर्षोंसे कलकत्तामें एवं अन्यत्र भी गीता, उपनिषद् आदिपर प्रवचनका आयोजन करते रहे हैं। उनमें देश-विदेशके अध्यात्मप्रेमी वं विद्वान्, व्यापारी विविध प्रकारके सम्मान्य वर्ग लाभ उठाता रहा है। उनका रेकार्ड कर लिया जाता है। उसीसे लिखकर अबतक 'गीता-दर्शन' नामसे तीन खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। उनका संकलन एवं सम्पादन श्रीमती सतीशबाला महेन्द्रलाल जेठीने बड़े प्रेम एवं लगनसे किया है।

अब चतुर्थ एवं पञ्चम खण्ड प्रकाशित हो रहे हैं। इनका संकलन श्रीमती सरला विरलाने बड़े मनोयोगसे किया है। आपको ज्ञात होगा कि एक घण्टेका प्रवचन संग्रह करनेमें छः-सात घण्टे लग जाते हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल प्रवचन सुनना, दिनभर आतिथ्य-सत्कार एवं घरकी देखभाल करना सायंकाल पुनः प्रवचनका आयोजन एवं श्रवण करना तथा साथ ही साथ रातमें छः-सात घण्टे प्रवचन

लिखना अत्यन्त परिश्रमसाध्य कठिन कार्य है। यह विना सच्ची लगन एवं प्रेमके नहीं हो सकता। जब हम प्रातःकाल प्रवचन करनेके लिए विरलापार्क पहुँचते तो पहले दिनका किया हुआ प्रवचन लिखित रूपमें हमारे हाथोंमें आजाता। उनके परिश्रम, लगन, शीलस्वभाव एवं गरीबोंकी सेवा जो नैसर्गिक रुचि है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

हम हृदयसे आशीर्वाद देते हैं कि वे दीर्घकालतक सपरिवार स्वस्थ प्रसन्न रहकर मानवताकी विशिष्ट सेवा करती रहें।

शेष, भागवत्कृपा।

दीपावली
का. कृ. चतुर्दशी
सं. २०३६
२०-१०-७९

—स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
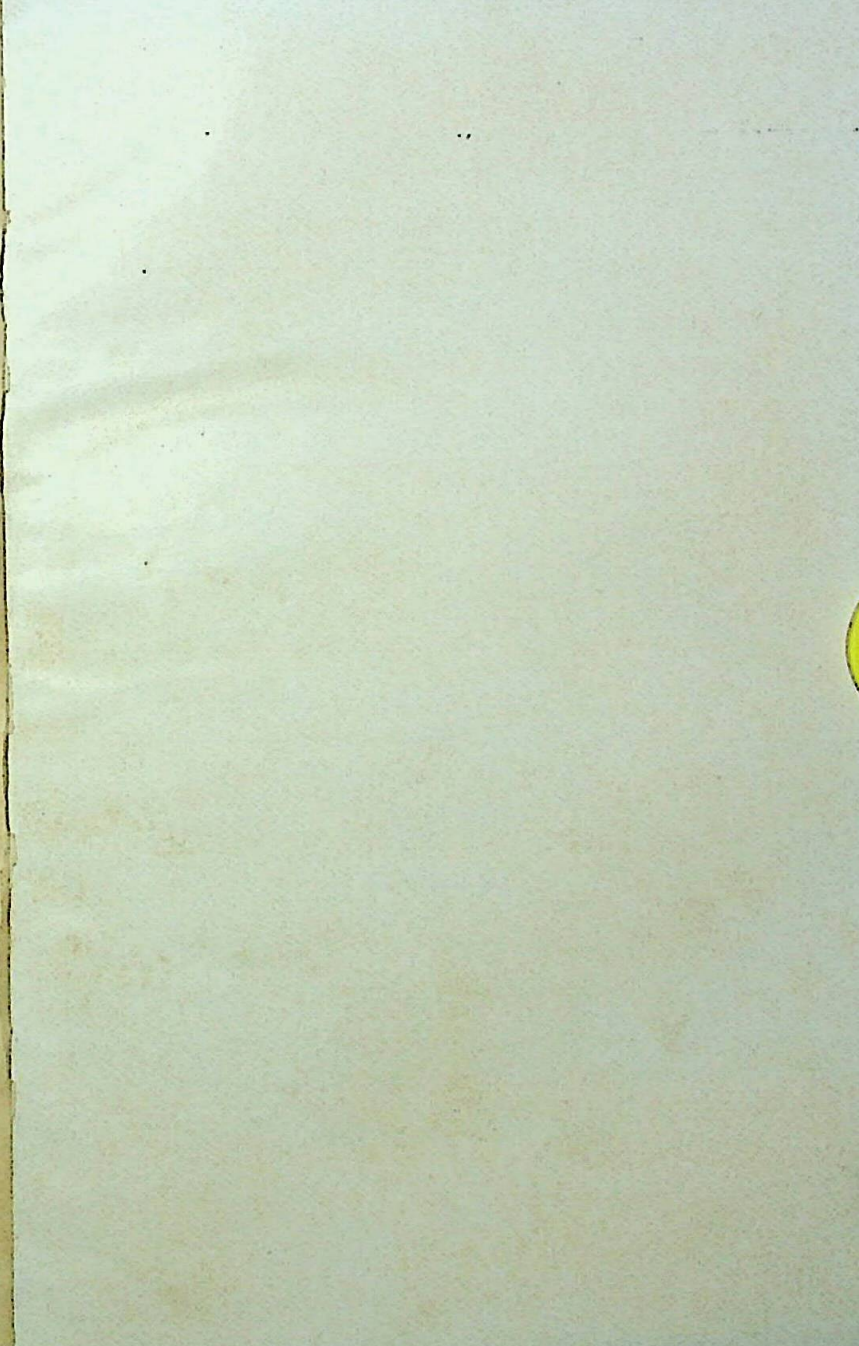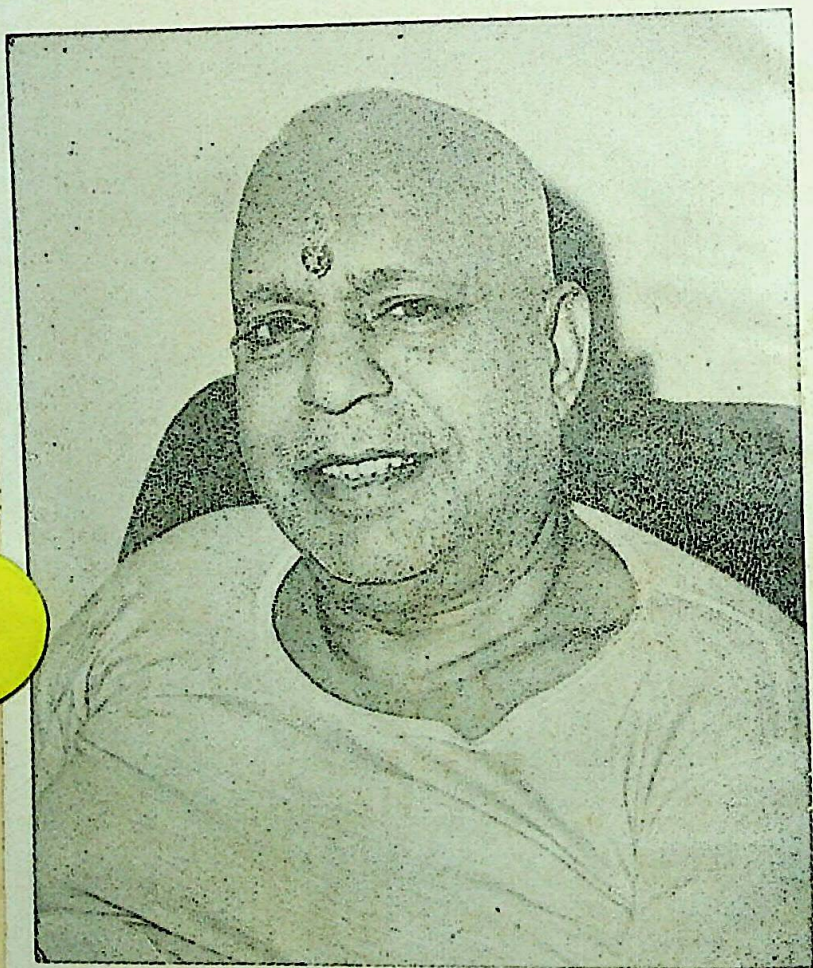
स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

गीता-दर्शन

[४]

प्रवचन : १

अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ।

अम्ब त्वामनुसन्दधामि अर्थात् हे अम्ब, हे माँ, मैं तुम्हारा अनुसन्धान करता हूँ। 'अम्ब' शब्दका संस्कृतमें अर्थ है— वर्णात्मिका। 'अव्' शब्दे धातुसे अम्ब शब्द बनता है। अम्बा वह है जो बोलना सिखाती है। सरस्वती माँ है इसीसे हम

उसको अम्बा कहते हैं—वाग्देवी। आधिदैविक दृष्टिसे वाग्देवी सरस्वती है; आध्यात्मिक दृष्टिसे वाग्देवी वाक् है। यह गीता क्या है? भगवान्‌की वाणी—साक्षात् सरस्वती, अपने हृदयके भाव दूसरेके हृदय तक पहुँचानेवाली—ज्ञानका प्रवाह।

तो आइये, अर्जुनके रथपर सारथिके रूपमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करें। उपनिषद्‌का कहना है कि हमारे जीवनमें एक सारथि चाहिए-- हमारे जीवनमें एक बागडोर चाहिए।

> विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
> सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥
>
> —कठ० १.३.९

जिसके जीवन-रथका सारथि विज्ञान है और जिसके मनकी बागडोर अपने हाथमें है, वह मार्गसे पार हो जाता है, अपने गन्तव्य तक पहुँच जाता है। वहाँसे फिर राग-द्वेषके संसारमें उतरना नहीं होता। यह संसार क्या है? बस, राग और द्वेष—किसीसे राग होता है तो किसीसे द्वेष। यह राग-द्वेष ही संसार है। स्वर्ग-नरक इसीसे बनते हैं। अपने जीवनमें जब विज्ञान सारथि होता है और मनकी लगाम अपने हाथमें होती है तब कहीं भटकनेका डर नहीं रहता। इसीसे उपनिषद्‌में बताया गया है—

> आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
> बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
> इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
> आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥
>
> —कठ० १.३.३-४

तात्पर्य यह कि यह जीवन रथी है, अर्जुनके स्थानपर है। **आत्मानं रथिनं विद्धि**—आपका शरीर रथ है। इसमें रथी होकर बैठा है जीव। बुद्धिमें बैठकर भगवान् सारथिका काम करते हैं। इसे यों समझिये—बुद्धिमें वासुदेव हैं, मनकी वागडोर है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और हम जो इन्द्रियोंसे संसारके विषयोंको ग्रहण करते हैं, यही उनके दौड़नेके देश हैं। **आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः**—जीवात्मा, इन्द्रिय और मन, इनसे युक्त होकर आत्मा भोक्ता बनता है। **कर्तृत्वभोक्तृत्वलक्षणः संसारः।** जब हम अपनेको कर्ता मान बैठते हैं तो अपनेको भोक्ता माननेके लिए विवश हो जाते हैं।

क्या आश्चर्य है! मुद्रा तो है ज्ञानकी और अमृतका दोहन हो रहा है। एक ऐसा ग्वाला—गोपाल है, जो उपनिषदोंकी गाय दुह रहा है। ग्वालेका बालक (ग्वालबालके रूपमें स्वयं भगवान्) और वह उपनिषदोंकी गाय दुह रहा है! उसका हाथ है ज्ञान मुद्रामें और वह अमृतका दोहन कर रहा है।

गीताका प्रारम्भ कहाँसे होता है, इसमें भक्तों और वेदान्तियों-में मतभेद है। **शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्** (२.७)—यहाँसे गीताका प्रारम्भ होता है, ऐसा भक्तोंका मत है और **अशोच्यानन्वशोचत्वं** (२.११)से प्रारम्भ होता है, ऐसा वेदान्तियोंका मत है। भगवत् शरणागति मुख्य है, ऐसा भक्त लोग कहते हैं और शोक-मोहकी निवृत्ति मुख्य है, ऐसा वेदान्ती कहते हैं। **अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः** (१८.६६) यहाँ गीता समाप्त हो जाती है। गीता **अशोच्यानन्वशोचस्त्वं**-से प्रारम्भ होती है और **मा शुचः** पर समाप्त होती है, ऐसा वेदान्ती लोग कहते हैं और **शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्** से गीता प्रारम्भ होती है और **करिष्ये वचनं तव** (१८.७३) पर

समाप्त होती है, ऐसा भक्त लोग कहते हैं। एक कृष्णके वचनसे प्रारम्भ और कृष्णके वचनपर समाप्ति तथा दूसरे अर्जुनके वचन-से प्रारम्भ और अर्जुनके वचनपर समाप्ति मानते हैं। बीचमें कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोगका वर्णन है। यह जीवनके लिए कोई नयी चीज नहीं है।

आप कुछ करना चाहते हैं, क्योंकि कुछ पाना चाहते हैं। जिसके जीवनमें कुछ पानेकी इच्छा है उसको कुछ करना पड़ेगा। साधन और साध्यका परस्पर सम्बन्ध होता है। साध्यका भी ज्ञान होना चाहिए और साधनका भी ज्ञान होना चाहिए। यदि श्रद्धा नहीं होगी हृदयमें तो साधन और साध्यके सम्बन्धका ज्ञान नहीं होगा। जो हम कर रहे हैं और जो पाना चाहते हैं, उनके साथ हमें श्रद्धा ही जोड़ती है।

हम जो कर रहे हैं, उससे हम जो चाहते हैं, वह हमको मिलेगा। इस प्रकार पहले ज्ञान हुआ कि यह करेंगे तो यह मिलेगा। फिर श्रद्धापूर्वक साधनका अनुष्ठान हुआ। साधनका अनुष्ठान करते समय भी श्रद्धाका होना आवश्यक है कि हम जो कर रहे हैं उससे फलकी प्राप्ति होगी। श्रद्धाहीन कर्ममें रस नहीं होता—स्वाद नहीं आता। यदि आप अपने फलको सर्वथा अन्तमें फेंक देंगे तो जो कर्म आप कर रहे हैं, जो साधन कर रहे हैं, इसमें स्वाद नहीं आयेगा। श्रद्धासे रसकी उत्पत्ति होती है। यदि श्रद्धासे कर्ममें रसकी उत्पत्ति हो गयी तो फलकी ओरसे दृष्टि हट जाती है। कर्म करनेमें ही इतना मजा है, इतना स्वाद है कि बादमें कुछ मिले या न मिले, स्वर्ग मिले कि न मिले, कौन देखता है? हमको तो यह काम करनेमें ही एक उल्लास, एक हर्ष, एक प्रसादकी प्राप्ति होती है। यह काम करनेमें ही हमको स्वाद आता है।

यहाँ यह ध्यान देनेकी बात है कि काम करनेमें यदि भूत लग जाता है अर्थात् हम दौड़ रहे हैं आगेको तथा देख रहे हैं पीछेकी ओर कि हमारे पीछे कोई भूत तो नहीं आ रहा है, तो आगेके पाँव भी लड़खड़ा जाते हैं और हम रास्तेसे च्युत हो जाते हैं। इसके साथ ही हम इतना आगे देखने लगते हैं कि पाँवके नीचे क्या है, इसका भी पता नहीं चलता; तब भी गिरनेकी सम्भावना रहती है। इसी प्रकार यदि पाँवके नीचे इतना देखने लगते हैं कि आगे क्या है यह भूल जाता है, तब भी गति अवरुद्ध हो जाती है। ये भूतके संस्कार हैं। वर्तमानमें कायदेसे अपने पाँव रख रहे हैं और ठीक लक्ष्यकी ओर—साध्यकी ओर बढ़ रहे हैं तो साधन-साध्यके सम्बन्धका ज्ञान होना चाहिए कि यह करनेसे यह मिलता है। श्रद्धापूर्वक साधनमें प्रवृत्ति होनी चाहिए। ज्ञानसे इच्छा होती है, इच्छासे कर्म होता है और कर्मसे सफलता मिलती है।

निष्काम लोग कहते हैं कि हमारा जो अन्तःकरण शुद्ध हो रहा है, वही फल है। हम जो काम कर रहे हैं, वर्तन माँज रहे हैं, वर्तन धो रहे हैं और उसमें स्वच्छता आ रही है—हमारा वर्तन जो चमक रहा है तो उसको यह चमकाना हमारे कर्मका काम है। देखना यह है कि हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो रहा है कि नहीं हो रहा है।

गीतामें भगवान्ने अर्जुनको बताया कि यह विज्ञान सारथि है—**सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः। सारयति अश्वान् इति सारथिः**—जो घोड़ोंका संचालन करे उसका नाम है सारथि। हमारी इन्द्रियाँ घोड़े हैं। संचालन ठीक हो रहा है कि नहीं, असमयमें लगाम खींच दी, असमयमें ढील दे दी या असमयमें मोड़ दे दिया तो इससे हमारी इन्द्रियोंके घोड़े या तो रुक जाते हैं या

तेज दौड़ने लगते हैं या बेरास्ते भटक जाते हैं। तो मनकी वाग-डोर भी ठीकसे चलनी चाहिए।

भगवान्ने अर्जुनसे कहा—**नियतं कुरु कर्म त्वं**—तुम कर्म करो। गीता पौरुषका ग्रन्थ है। **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** (४.३८)—ज्ञानके समान पवित्र और कुछ नहीं है। **सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि** (४.३६)—आओ ज्ञानकी नावपर बैठो. तुम सम्पूर्ण कठिनाइयोंसे पार हो जाओगे। अन्तमें भगवान्ने कहा कि काम करो, परन्तु अपनी अन्तरात्माको मेरे साथ मिला दो। यह छठे अध्यायका उपसंहार है और सातवेंका उपक्रम है।

वेदान्ती लोग मानते हैं कि उपक्रममें बड़ा पराक्रम होता है। उपक्रम माने कोई काम हम प्रारम्भ करते हैं तो कैसे प्रारम्भ करते हैं। उस समय किसलिए प्रारम्भ करते हैं, किस लक्ष्यसे, किस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए प्रारम्भ करते हैं। जिस कामको करनेके लिए या जिस कामकी सफलताके लिए हम आरम्भ करते हैं, वही अन्तमें पूर्ण होता है—सफल होता है। भक्त लोग कहते हैं कि उपक्रममें, प्रारम्भमें कोई गलती भी हो सकती है; परन्तु जहाँ उपसंहार हो वहाँ जाकर हमारा कर्म पूर्ण होता है। उप-क्रममें संकल्प है और उपसंहारमें प्राप्ति है।

आओ, अब देखो, यहाँ छठे अध्यायका उपसंहार और सातवें अध्यायका उपक्रम—दोनों एक साथ मिल जाते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ ६.४७

भगवान्ने कहा—हम आपका आदर करते हैं। किसका आदर करते हैं? **मतः सम्मतः** अर्थात् वह हमारी मतिके अनुरूप है-चाहे भक्तियोगी हों, चाहे ज्ञानयोगी हों। **योगिनामपि सर्वेषां-**

जितने भी योगी होते हैं—तात्पर्य जितने भी साधक होते हैं क्योंकि योगीका अर्थ है—'साधक' (साधन करनेवाले) ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि वे चन्दन कैसे लगाते हैं । यह तो गीतामें है नहीं । चन्दन आड़ा है या खड़ा है, इसका वर्णन सारी गीतामें कहीं नहीं है । आप तुलसीकी माला पहनते हैं या रुद्राक्षकी, इसका भी वर्णन सारी गीतामें नहीं है । आपका कपड़ा लाल है कि सफेद है, इसका वर्णन भी गीतामें नहीं है ।

वहाँ तो 'योग' शब्दका जो अनेक अर्थोंमें प्रयोग हुआ है वह है—**योगः कर्मसु कौशलम्** (२.५०) तात्पर्य है कर्म करनेकी कुशलता । काम करते समय आप इतने आविष्ट तो नहीं हो जाते कि उसके फन्देमें आप फँस गये । ऐसी चतुराईसे, ऐसे कौशलसे कर्म कीजिये कि कर्म करते भी चलिये और उसमें फँसिये भी मत ।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते' २.४८ । आपके मनमें रागद्वेष न हो, समता बनी रहे । सिद्धि-असिद्धिका ख्याल मत कीजिये । यह ध्यान कीजिये कि मैं काम ठीक-ठीक कर रहा हूँ कि नहीं । यदि आप अपना कर्म ठीकसे कर रहे हैं तो आगेकी फिक्र करनेकी कोई जरूरत नहीं । क्या अच्छा काम करना अपने आपमें सफलता नहीं है ? जिस समय एक गिलास पानी लेकर आप दूसरेको पिलाते हैं, उस समय वह हाथमें पानीका गिलास लेना और किसीको पिलाना आपका यह कर्म क्या आपको सुख नहीं देता ? जब आप किसीको नमस्कार करते हैं तो क्या मजा नहीं आता ? नमस्कार भी तो एक कर्म ही है न ! जब आप किसीका स्वागत करते हैं तो क्या आपको आनन्द नहीं आता ? तो कर्म स्वयंमें रस है । यदि आप कर्म श्रद्धासे करते हैं, विनयसे और निष्ठाके साथ करते हैं तो काम करना स्वयंमें एक रस है ।

योग तो बहुत तरहसे किया जाता है। समाधि लगाना भी योग है, कर्म करना भी योग है, भक्ति करना भी योग है तथा ज्ञान प्राप्त करना भी योग है। यों योग विविध हैं, लेकिन जो निवृत्तिपरक योग हैं, हम यहाँ उनकी चर्चा नहीं करते। आप काम करते रहिये और आपका योग होता रहे, तो यह कैसे होगा ? भगवान् श्रीकृष्णने बताया कि **मद्गतेनान्तरात्मना**। यह योगकी कुञ्जी है।

आप अपनी अन्तरात्माको भगवान्‌के साथ मिला दीजिये। आपकी अन्तरात्मा कहाँ है ? परमात्माके साथ मिली हुई है कि अलग पड़ गयी है। सर्वात्माकी दृष्टिसे विचार करिये तो यह जो विश्वसृष्टि चल रही है, इसमें पृथिवी सबको धारण करती है और सर्वात्मा पृथिवीके अन्दर बैठकर काम कर रहा है। जल सबको तृप्त करता है और जलके अन्दर बैठकर सर्वात्मा काम करता है। सूर्य सबको रोशनी दे रहा है और सूर्यके भीतर बैठकर सर्वात्मा काम कर रहा है। यों ही वायु सबको प्राण दे रहा है तथा आकाश सबको अवकाश दे रहा है। देखिये, यही है—**मद्गतेनान्तरात्मना**।

जब आपकी अन्तरात्मा पृथिवीके समान सबको धारण करती है—सबको क्षमा करती है; जलके समान सबका आप्यायन करती है - सबको तृप्त करती है; तेजके समान—सूर्यके समान—सबको प्रकाश देती है; वायुके समान सबको प्राण प्रदान करती है और आकाशके समान सबको अवकाश देती है, तब समझिये कि आपकी अन्तरात्मा परमात्माके साथ मिल गयी। इस प्रक्रियामें यदि यह मेरा और वह तेरा तथा वह दुश्मन और यह दोस्त अर्थात् रागद्वेषमें फँस गयी तो आपकी अन्तरात्मा परमात्माके साथ नहीं मिली।

मद्गतेनान्तरात्मनाका अभिप्राय है कि अपनी अन्तरात्माको मेरे साथ मिला दो। यदि ऐसा अनुभव नहीं होता है तो यह मत भूलिये कि अनुभव एक दिनमें नहीं होता।

पहले ही कहा जा चुका है कि **श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।** श्रद्धाके साथ आगे बढ़ो; **श्रद्धया सत्यमाप्यते**—वेदका मन्त्र बोलता है कि श्रद्धासे सत्यकी प्राप्ति होती है। एक मन्त्र बोलता है—**नाश्रद्दधानाय हविर्जुषन्ति देवा**—अश्रद्धालुका हविष्य देवता लोग ग्रहण नहीं करते। **प्रातः श्रद्धामावाहमहे** –. प्रात:काल हम श्रद्धाका आवाहन करते हैं; ईश्वरमें श्रद्धा हो, शास्त्रमें श्रद्धा हो, गुरुजनोंमें श्रद्धा हो, कर्ममें श्रद्धा हो और सफलतामें श्रद्धा हो। श्रद्धा हो तो रस आयेगा और उत्साह बढ़ेगा।

श्रद्धावान्भजते यो मां........

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। १२.२०

क्या भगवान् अनुभवीसे प्रेम करते हैं? नहीं, अनुभवी तो भगवान्की आत्मा ही है, उससे क्या प्रेम करेंगे? तो भगवान् प्रेम किससे करते हैं? **यो मद्भक्तः स मे प्रियः** १२.१६—उनका वचन है कि जो मेरा भक्त है वह मेरा प्यारा है। फिर यदि पूछिये कि अत्यन्त प्यारा कौन है तो उनका कहना है कि जिसको अनुभव भी नहीं हुआ है; अभी भक्ति भी पूरी तरहसे हृदयमें नहीं आयी है; जो अभी शिशु है, बालक है श्रद्धाके साथ—**श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः**—अतीव प्रिय।

गीताके द्वादश अध्यायके **अद्वेष्टा सर्वभूतानां** से लेकर अध्यायकी पूर्तिपर्यन्त आठ श्लोकोंमें भक्तके लक्षण बताये गये हैं। उनसे युक्त भक्तको ही भगवान्ने अपना प्यारा कहा है। और अत्यन्त प्यारा कौन है? जो श्रद्धासे युक्त है; जिसमें न तो अभी ज्ञानका उदय हुआ है और न प्रेमका ही उदय हुआ है, परन्तु वह

मुझपर विश्वास करके श्रद्धाके साथ मेरा भजन करता है। अतः अपनी अन्तरात्माको ईश्वरके साथ मिला दो और अपने अन्दर भगवान्‌की व्यापिनी आदि शक्तियोंको प्रकट होने दो।

आकाशकी शक्तिको व्यापिनी और वायुकी शक्तिको प्राणनी कहते हैं। इसी प्रकार तेजको प्रकाशिनी शक्ति और जलको आप्यायिनी शक्ति बोलते हैं। पृथिवीकी शक्तिका नाम धारिणी है। यह बात भगवान्‌ने सातवें अध्यायमें स्वयं कही है—**रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः** (श्लोक ८)। यदि ये शक्तियाँ प्रकट नहीं होती हैं तो श्रद्धा रखो। भगवान् कहते हैं—तुम युक्त ही नहीं युक्तर, युक्तर ही नहीं युक्ततम हो—अतिशय युक्त हो।

युक्तकी चर्चा हम पीछे करेंगे, पहले सातवें अध्यायका प्रारम्भ करें। कैसा अद्भुत प्रारम्भ है सातवें अध्यायका। उसमें पाँच बातें कही गयी हैं। पहले श्लोकमें भगवान्‌की वाणी प्रवाहित हो रही है—**श्रीभगवानुवाच**। भगवान् उवाचका अर्थ है भगवद् वचन। व्यासजीने कहा—यह आगे जो है, यह भगवान्‌का वचन है। छठे अध्यायके अन्तमें किसी दूसरेका वचन तो आया नहीं, भगवान् ने ही बोल दिया कि—**युक्ततमो मतः** और फिर अध्यायका विच्छेद होकर सातवाँ अध्याय प्रारम्भ हुआ। तो प्रश्न हो सकता है कि बोल तो रहे हैं भगवान्, यह भगवान्‌का ही वचन है, फिर अध्यायका विच्छेद क्यों हुआ ?

मधुसूदन सरस्वती आदि विद्वानोंका मत है कि पहले छः अध्यायोंमें कर्मयोगका विशेषरूपसे वर्णन है। सातवेंसे लेकर बारहवें अध्याय तक विशेषरूपसे भक्तियोगका वर्णन है। अतः कर्मयोग और भक्तियोगके मध्य एक रेखा खींचनेके लिए अध्याय आगया बीचमें। यहाँसे एक दूसरा अध्ययन प्रारम्भ होता है भक्तियोगका अध्ययन, छः अध्यायों तक कर्मयोगका अध्ययन है—अध्याय (अध्ययनं

अध्यायः)। अध्ययनको ही अध्याय बोलते हैं। जैसे पहला पाठ, दूसरा पाठ और तीसरा पाठ कहते हैं, वैसे ही यह सातवाँ पाठ है। सातवाँ अध्याय अर्थात् सातवाँ पाठ।

स्तोत्रमें कहा है कि भगवान्‌की कृपा उसपर होती है जो दैन्यादि सद्‌गुणोंसे युक्त है, अभिमानीपर कृपा नहीं होती। इसके माने है कि अभिमानी कृपाका अनुभव नहीं कर सकता। यह बात नहीं है कि कोई ऐसा देश है, कोई ऐसा काल है, कोई ऐसा हृदय है अथवा कोई ऐसी वस्तु है जिसपर भगवान्‌की कृपा न हो, परन्तु अहं भावकी प्रधानतासे कृपाका अनुभव नहीं होता और जो **शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्** करके शरणागत होता है वह भगवान्‌की वाणी सुनता है।

अब देखिये, यहाँ अर्जुन मौन है और भगवान्‌की वाणी मुखर हो रही है। इसके लिए आवश्यक है कि विनय, दैन्यादि सद्‌गुण हों, जिज्ञासा हो; वाद-विवादकी रुचि न हो, मतवाद न हो। यदि आप अपने मतकी स्थापना करके चाहते हैं कि हमारे मतका समर्थन भगवान् करें तो यहाँ भगवान्‌की वाणी अवरुद्ध हो जायेगी और आपकी मति मुखर हो जायगी। जहाँ हम स्वयं जिज्ञासु होते हैं वहाँ भगवान् बोलते हैं। अतः हम अपने मनके विचारोंकी, चिन्ताओंकी समाप्त कर दें और भगवान्‌की वाणी सुनें।

वैखरीके भीतर मध्यमा है, मध्यमाके भीतर पश्यन्ती है तथा पश्यन्तीके भीतर परा है। परा वाक् साक्षात् भगवान् है। वही गीताके रूपमें प्रकट हो रही है। जैसे प्रेमियोंके बीचमें वेणुनाद प्रकट होता है - वंशीध्वनि, तात्पर्य यह कि जिसके हृदयमें भगवान्‌का प्रेम है उसके हृदयको भगवान् बाँसुरी बजाकर आकृष्ट कर लेते हैं, वैसे ही जिसके हृदयमें जिज्ञासा होती है उसके हृदयको भगवान् गीता बोलकर आकृष्ट कर लेते हैं।

प्रेप्सुके लिए वंशीध्वनि है। जो पाना चाहता है—प्रेम चाहता है उसके लिए वंशीध्वनि है और जो ज्ञान चाहता है—कर्मका ज्ञान, भक्तिका ज्ञान अथवा समाधिका ज्ञान—उसके लिए भगवान्की गीता है। उसको आत्माका ज्ञान, परमात्माका ज्ञान देनेके लिए भगवान्की वाणी मुखर होती है।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥
मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ७.१.२.३

अपनी वाणीकी ओर अर्जुनको अभिमुख करते हुए भगवान् कहते हैं—'मैं तुमको एक ऐसा ज्ञान दे रहा हूँ जिसको जान लेने-पर इस विश्वसृष्टिमें दूसरा कुछ जानना शेष नहीं रहता।' देखिये, यदि दुनियासे आप सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहेंगे तो आपको भटकते ही रह जाना पड़ेगा। मिट्टीमें कितने कण हैं, पानीमें कितनी बूँदें हैं, वायुमें कितने झोंके हैं, अग्निमें कितनी लपटें उठती हैं, तेजके क्या-क्या रूप हैं और ग्रह-नक्षत्र तारे कितने हैं, इनका कभी अन्त नहीं मिलेगा। तो क्या बाहरकी वस्तुओंको गिन-गिनकर हम उनका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं? नहीं प्राप्त कर सकते। परन्तु एक वस्तु ऐसी है जिसका ज्ञान हो जाने पर सबका ज्ञान हो जाता है। उसको कहते हैं—अधिष्ठानका ज्ञान, उपादानका ज्ञान।

जिससे ये सब बने हैं उसको जान लो तो सबका ज्ञान हो जायेगा। सबमें जिसकी रोशनी है उसको जान लो, सबका ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। सबमें जो रस है उसको जान लो तो सबका ज्ञान हो जायेगा। अधिष्ठानका ज्ञान, उपादानका ज्ञान,

स्वप्रकाशका ज्ञान, परमानन्दका ज्ञान—एक विज्ञानसे सर्वका विज्ञान। यह सर्वका विज्ञान आत्मदृष्टिसे भी सुलभ होता है और परमात्म-दृष्टिसे भी।

भक्त लोग कहते हैं—एक भगवान् ही सबके रूपमें आया, अतः उसको जान लो तो सबका ज्ञान हो जायगा। शैव लोग कहते हैं—एक आत्मा ही सबके रूपमें प्रकट होता है। यह भगवान्का विलास है, ऐसा भक्त लोग कहते हैं। यह आत्मा-का उल्लास है ऐसा शैव लोग कहते हैं। आत्मा और परमात्मा दो नहीं, एक ही हैं। इसलिए सब ब्रह्मस्वरूप है, ऐसा वेदान्तका कहना है। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक ऐसा ज्ञान है जिसके प्राप्त हो जानेपर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।

इसके लिए प्रणाली क्या है? अब प्रणाली बताते हैं। पहली बात तो यह है कि आपके मनकी आसक्ति होनी चाहिए परमात्मामें—**मय्यासक्तमनाः पार्थ**। दूसरी बात है—**मदाश्रयः**—आश्रय होना चाहिए भगवान्का। **योगं युञ्जन्** अर्थात् कर्म करते रहिये; यह तीसरी बात हुई। **यथा ज्ञास्यसि**—जिस रीतिसे ज्ञान होगा, वह रीति सुनो, **समग्रं मां ज्ञास्यसि**—समग्र मुझको जानोगे। उपर्युक्त पाँच बातोंकी प्रतिज्ञा एक श्लोकमें की गयी है।

अब इनपर विचार करिये। प्रेम किससे है और आश्रय किसका है, ये दोनों दो बातें होती हैं। एक कर्मचारी है और एक सेठ है। एक सैनिक है, वह सेनापतिके अथवा राजाके आश्रित है। यों अपने सेठके या राजाके आश्रित है, कर्मचारी। उसको उन्हींका आश्रय है, उन्हीसे पैसा मिलता है, उन्हींसे जीविका मिलती है। वह उन्हीं-के लिए सब काम करता है। वे ही उसके आश्रय हैं। लेकिन उसका प्रेम कहाँ है? अपनी पत्नीसे है; अपने पुत्रसे है; अपने शरीरसे है; अपने मित्रसे है। यों, प्रेम अलग है और आश्रय अलग है। विभाग

हो गया, दोनोंका। अपनी बुद्धिका आश्रय है, अहंभावका आश्रय है। प्रेम किससे है? शरीरसे, पत्नी-पुत्र और मित्रसे।

इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि दोनोंको एक कर लो—**मय्यासक्तमनाः** और **मदाश्रयः**। मेरा ही आश्रय हो और मुझसे ही प्रेम हो। यह है आश्रय और प्रेमास्पदकी एकता। आपका मुनीम, आपका मैनेजर आपके आश्रित है। वह जानता है कि अगर इनका काम, इनकी सेवा मैं नहीं करूँगा तो मुझको धन मिलना बन्द हो जायगा और हम जियेंगे कैसे? तो उसका उद्देश्य है अपने प्रेमास्पद शरीरको और शरीरके सम्वन्धियोंको जिलाना, उनको सुख पहुँचाना। वह सुख किसको पहुँचाना चाहता है? शरीरको और शरीरके सम्वन्धियोंको तथा आश्रित किसके हैं? सेठके, साहूकारके। अव आप देखिये, विभाग जब हो गया तो एक जगहसे लेंगे और दूसरी जगह देंगे।

भगवान् कहते हैं—'हमसे ही लो, हमको ही दो।' **मदाश्रयः**... **मय्यासक्तमनाः**—जहाँसे प्राप्ति होती है, जहाँसे ज्ञान मिलता है, वहीं अपने आनन्दको स्थापित कर दो। **मय्यासक्तमनाः**के इसी श्लोकमें तीन वार कृष्णका 'मैं' आता है—मयि, मत् और माम्—तीन बार वे अपनी ओर खींचते हैं। अव इससे अधिक और क्या वात हो सकती है? मुझसे प्रीति, मेरा आश्रय और मेरा ज्ञान। मुझसे प्रेम करो, मेरा आश्रय लो और मुझे जानो। कैसा जानो? **समग्रं मां**—सम्पूर्ण रूपसे मुझे जानो, अधूरा मत जानो। अध्यायके अन्तमें यह वात कही गयी है, समग्रता क्या होती है—

> **साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।**
> **प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥** ७.३०

यह अधिभूत जगत् भी भगवान् है। ये पेड़-पौधे भी परमात्माके स्वरूप हैं। यह मिट्टी भी परमात्माका स्वरूप है, जल भी

परमात्माका स्वरूप है। पहले राजस्थानमें बोलते थे—'बाबा, पानी है इसको व्यर्थ मत गँवाओ। धरतीपर चलो तो जूतेसे रौंदते हुए मत चलो। एक भी तिनकेको तोड़कर मत फेंको। पेड़ मत काटो। व्यर्थमें आग मत जलाओ। हवाको गन्दी मत करो। ऐसे शब्द मत बोलो जिससे आकाश गन्दा हो।'

हम जो शब्द बोलते हैं, वे सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त हो जाते हैं गन्दे शब्द बोलेंगे तो अपनी गन्दगीको आकाशके साथ, ईश्वरके साथ जोड़ेंगे। हमारी साँस गन्दी निकलेगी तो वातावरण गन्दा होगा। हम व्यर्थमें धुआँ करेंगे तो तेजस् तत्त्व दूषित होगा। पानीमें गन्दी चीज डालेंगे तो पानी गन्दा होगा। परमेश्वरको समग्र रूपमें जानो। अधिभूत भी वही है, अधिदैव भी वही है और अध्यात्म भी वही है। अपना स्वरूप भी वही है और इन्द्रादि, सूर्यादि देवताका स्वरूप वही है तथा यह जो दुनिया हम देख रहे हैं, यह भी वही है। यही है उसका समग्रं मां। इसके ज्ञानकी प्रणाली क्या है? विवेक। **यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु** क्या है? **भूमिरापोऽनलो वायुः** करके आगे समझायेंगे।

भगवान्‌के दो शरीर हैं—एक क्षर शरीर है और एक अक्षर शरीर है। एक प्रकृति है और एक पुरुष है। पन्द्रहवें अध्यायमें क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और पुरुषोत्तम; तेरहवें अध्यायमें क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ और ब्रह्म तथा सातवें अध्यायमें अपरा प्रकृति, परा प्रकृति और परमात्मा ये तीन तीन करके वर्णन किये गये हैं। तो ये सब क्षर, क्षेत्र और अपरा प्रकृति भी परमात्माका ही शरीर है, अतः दुनियाको मत बिगाड़ो।

एक बार एक महात्माके पास हम लोग बैठे थे। हमारे एक साथीने घास नोचना शुरू कर दिया। यह वैसा ही काम था जैसे किसी बच्चेकी आदत हो कि कालीनपर बैठे तो उसमें-से रेशे

निकालने लग जाये। तो दूब थी वहाँ और वह महाशय उसे तोड़ने लगे।

इसपर महात्माने कहा—'भाई, क्या करते हो ? यह माटी, बीजके संयोगसे, जल और वातावरणके संयोगसे हरी-हरी घासके रूपमें आयी है। इसका विकास हुआ है। मृत्तिका विकसित होकर घासके रूपमें प्रकट है। इसमें जीवात्माका प्रवेश हुआ है। अब इसको गायें खायेंगी तो दूध बनेगा। दूधको मनुष्य पियेगा तो मनुष्य हो जायगा—तीन पीढ़ीमें यह घास मनुष्य हो जायेगी। यदि तुम इसे नोचकर फेंक दोगे तो यह फिरसे माटीकी माटी हो जायेगी। तो सावधान! घासको हानि मत पहुँचाओ। यह भी परमात्माका स्वरूप है।

एक सज्जन किसी महात्मासे मिलने गये। उन्होंने पटाकसे जो जूता निकाला तो एक जूता दूसरे जूतेपर चढ़ गया। फिर किवाड़ी खोली तो खट्से आवाज हुई। अब गये, प्रणाम किया महात्माको और बोले—'महाराज, आप उपदेश करो—परमेश्वर क्या है और कैसे मिलता है ?' महात्माने कहा—'तुम पहले बाहर जाओ। वह जो जूते एक दूसरेपर चढ़े हुए हैं, उन्हें ठीक करो। उन्हें कष्ट हो रहा होगा, जूतेकी तकलीफ दूर करो। खटाकसे जो किवाड़ी वन्द की है तो उसे चोट लगी है। उससे क्षमा माँगो।' ऐसे ही महात्माजीने यह भी बताया कि यदि फल रखे हों तो एक परसे दूसरेको उतार दो। जबतक एक फल दूसरे पर चढ़ा रहेगा, तबतक उसे सुख कैसे मिलेगा ? फलको भी सुखी रखो।

इसीलिए भगवान्ने कहा—**असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।** यह समग्र सृष्टि—यह पानी, यह आग, ये पेड़, ये पौधे—सभी परमेश्वरके रूप हैं। हम जड़ या चेतन जिसके भी साथ जो व्यवहार करते हैं, वह परमेश्वरके साथ व्यवहार करते हैं। हमारे

हृदयमें यदि परमेश्वरकी बुद्धि है तो वह बुद्धि ज्ञानके रूपमें प्रकट हो जायेगी।)

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः। एक बात तो यह हुई कि आप अपनी आसक्तिको तौल लीजिये। आप चिपकें कहाँ? आसक्तिके माने चिपकना होता है। सक्तिका अर्थ है सटना। हिन्दीमें 'सटना' बोलते हैं; संस्कृतमें बोलते हैं सक्ति। किसीके साथ पूरी तरह चिपक जाना है 'आसक्ति', 'आ'के माने हैं पूरी तरहसे। यह आसक्ति मनमें होती है। यह बदलती भी रहती है।

ऐसे समझिये कि यह हमारे एकके ही प्रति नहीं रहती। हम जब बच्चे थे तो अपने साथियोंसे हमारी दोस्ती थी। हम लोग सलाह करते थे कि अब आगे जीवनमें हम कैसे एक साथ रहेंगे, क्या-क्या काम करेंगे। लेकिन अब हमें उनके नाम भी याद नहीं हैं। यों ही जवानीमें कितने दोस्त हुए, ट्रेनमें कितने दोस्त बने—यात्रा करते समय कितने दोस्त बने। मालूम पड़ता था कि बस-बस, अब सब एक हो गये। इसका कारण क्या है? मनमें तो उठते हैं भाव कि यह मेरा मित्र है, अब हम इसके साथ हमेशा रहेंगे अथवा यह मेरा दुश्मन है, मेरे प्रति दौर्मनस्य रखता है—दुर्मना है।

अतः जिस समय हमारे मनमें यह भाव उत्पन्न होता है कि यह हमारा दुश्मन है या जिस समय यह भाव उत्पन्न होता है कि यह दोस्त है, उस समय क्रोधका उदय होता है या रागका उदय होता है। उस समय हमारा 'मैं' उस क्रोधके साथ या रागके साथ मिल जाता है। हम अपनेको द्वेषारूढ़, रागारूढ़ कर लेते हैं। फलतः हम द्वेषके साथ चिपक गये अथवा रागके साथ चिपक गये। थोड़ी देर बाद जब राग, द्वेष ढीला पड़ता है और हम

अपनेको उससे अलग कर लेते हैं, तब हमें अपनी गलती मालूम पड़ती है।

हमें मालूम पड़ता है कि हमारे रागमें जो पक्षपात था, वह हमारी बेहोशी थी तथा द्वेषमें हमारे मनमें जो जलन थी, वह हमारी बेहोशी थी। तब जो भाव हृदयमें आता है उसको योगकी भाषामें 'वृत्ति-सारूप्य' बोलते हैं। क्रोध वृत्तिका उदय हुआ, काम वृत्तिका उदय हुआ या लोभवृत्तिका उदय हुआ और हमने अपने आपको उसमें मिला दिया। हम क्रोधी हो गये, कामी हो गये; लोभी हो गये। तो भगवान् कहते हैं कि तुम काममें, क्रोधमें अथवा लोभमें अपनेको मत मिलाओ। तब कहाँ मिलाओ? मेरे साथ मिला दो। मुझसे तुम एक हो जाओ। जिस दृष्टिसे मैं सारी सृष्टिको देखता हूँ उसी दृष्टिसे तुम भी सारी सृष्टिको देखो।

एक सज्जनके सामने जब कोई समस्या आती है तो वे ऐसे सोचते हैं कि हमारे पिताजीके सामने ऐसी समस्या आती तो वे क्या निर्णय करते? ऐसे ही एक साधु हैं। उनके सामने जब कोई समस्या आती है तो वे सोचते हैं कि इस समय हमारे गुरुजी क्या निर्णय करते?

जब एक जीवात्माके सामने कोई समस्या आती है और वह यह सोचने लगता है कि इस समस्या पर परमात्माकी दृष्टि क्या होगी, तब आप देखिये—आपकी दृष्टिमें रागद्वेष नहीं होगा तथा समत्व आजायेगा।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। (९.२९)

भगवान् तो किसीसे रागद्वेष नहीं करते, इसलिए परमात्मा-की नजरसे नजर मिला दो। परमात्माके ज्ञानसे अपना ज्ञान मिला देना, परमात्माके प्रेमसे अपना प्रेम मिला देना, यह पार्टीबन्दीकी बात नहीं है। परमात्मा तो सबके साथ अपने

आपको मिलाकर रखता है—नामरूपे व्याकरवाणी—उसने अपनेको विशिष्ट आकृति प्रदान की कि जिससे सारे नाम और रूप प्रकट कर दिये।

आप जब परमात्माकी दृष्टिसे प्रेम करेंगे तो देखेंगे कि चींटोको शक्कर कौन देता है? चिड़ियाको उड़नेकी शक्ति कौन देता है? एक बीजको अंकुरित होकर पल्लवित, पुष्पित और फलित होनेकी शक्ति कौन देता है? बिच्छूमें विष कहाँसे आया? साँपमें विष कहाँसे आया? इनपर आप विचार करिये और अपनी दृष्टिको ईश्वरकी दृष्टिके साथ मिला दीजिये, अपने ज्ञानको ईश्वरके ज्ञानके साथ मिला दीजिये। ईश्वरसे मतभेद मत करिये।

यह मनुष्य दुःखी कब है? जब ईश्वरसे मन नहीं मिला। ईश्वरसे जब अपनी मति नहीं मिलती तब हम अज्ञानी हो जाते हैं—ईश्वरसे जब अपनी मति नहीं मिलती तब हम दुःखी हो जाते हैं। ईश्वरसे जब अपनी मति नहीं मिलती तभी मृत्युका भय सामने आता है। ईश्वरमें मृत्यु नहीं, दुःख नहीं, अज्ञान नहीं। ईश्वरसे विमुख होनेपर ही हम अज्ञानी और दुःखी होते हैं तथा हमारे जीवनमें मृत्युका भय आता है। अपने मनको ईश्वरके साथ चिपका दीजिये—इधर चिपका है संसारमें, उधर चिपका दो ईश्वरके साथ, तो संसार आता-जाता रहेगा। इसमें उतार-चढ़ाव है। संसार कभी ऊपर आता है, कभी नीचे जाता है—

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।

—उत्तर मेघ० ४६

जैसे रथका पहिया कभी ऊपर और कभी नीचे घूमता है, वैसे ही काल-चक्रमें यह संसार कभी ऊपर, कभी नीचे जाता

रहता है। कभी यह आगे बढ़ता है, कभी पीछे हटता है तो कभी खड़ा हो जाता है। यह संसारकी गति है। संसार एकरस कभी नहीं चलता। बच्चा जवान होता है, जवान बूढ़ा होता है और बूढ़ा भगवान्‌के दरबारमें जाता है। संसार एक सरीखा कभी नहीं रहता। यदि उसके साथ अपने मनको चिपकाकर रखोगे तो जब यह बदलेगा तब दुःख होगा, बिछुड़ेगा तब दुःख होगा, यह मरेगा तब दुःख होगा।

इसके विपरीत यदि परमात्माके साथ मनको मिलाकर रखोगे तो न परमात्मा बदलेगा, न बिछुड़ेगा, न मरेगा और न कहीं जायेगा। आपका मन हमेशा उसका स्वाद, उसका रस लेता रहेगा। आप काम करते चलो, सब काम करो। अपने पौरुषका ग्रन्थ है गीता; यह कोई आलस्यका ग्रन्थ नहीं है। इसमें अन्तमें **करिष्ये वचनं तव** और **मामेकं शरणं व्रज**का उद्घोष है। व्रज तो है न! आओ मेरी शरणमें आओ। अर्जुनने कहा—'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।'

करिष्ये वचनं तव की प्रतिज्ञाके साथ अपने मनको भगवान्‌के साथ, परमेश्वरके साथ चिपका दो। परमेश्वरका जैसा ज्ञान, आनन्द और स्वरूप है वैसे ही अपने मनको उसमें चस्पा कर दो, चिपका दो, आसक्त कर दो। परमात्माकी ओरसे मन कभी भटक जाय, भूल जाय, तब भी उसका आश्रय मत छोड़ो।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

•

प्रवचन : २

अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते

गीता माता है। आव ! अम्वा शब्द कैसे बनता है। अभिवर्ण्ये-वर्णात्मिका माता है। शव्दके रूपमें माता है। भगवान्‌के श्रीमुखसे वाग्देवी प्रकट हुई है। उनके हृदयमें जो सम्पूर्ण विश्वके प्रति मातृत्व है, पितृत्व है, सख्यत्व है वह वाणीका रूप धारण करके प्रकट हुआ है।

गीता मे हृदयं पार्थ। अर्जुनसे भगवान् कहते हैं—अर्जुन ! यह मेरा हृदय है। मैं गीता तुम्हें दे रहा हूँ। इतना ही नहीं—मैं अपना हृदय शब्दोंमें बाँधकर-रखकर तुम्हें दे रहा हूँ। गीता-माहात्म्यमें इस पदका प्रयोग हुआ है—**गीता मे हृदयं पार्थ।** पाँच बात बतायी गयी हैं। एक तो अपना काम करते रहो **योगं युञ्जन्।** जो साधन करते हो, जो अभ्यास करते हो, जो कर्म करते हो, उस कर्मको छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है, बदलनेकी आवश्यकता नहीं है। तव नयी बात क्या हुई ? कर्म करो लेकिन आसक्ति मुझसे रखो—कर्मसे और कर्मफलसे नहीं। कर्मका फल देना भगवान्‌के हाथमें है। क्या कर्म स्वयंमें इतना बढ़िया नहीं है, इतना पूर्ण नहीं

है कि उसको करते जायें और आनन्द लेते जायें। कर्म करनेके वाद आनन्दको फेंक देना—कर्मको सूखा बना देना। यदि हम कर्मके फलको बादके लिए फेंक देते हैं तो कर्मको नीरस बना देना है। यों ही कर्म करते समय यदि पीछेकी ओर देखते हैं, तव तो भूत लगा हुआ है और कर्मके फलको यदि आगे फेंक देते हैं तो कर्म स्वयंमें नीरस हो जाता है। इसलिए कर्ममें योग चाहिए। इसीलिए कहा है—**योगं युञ्जन्**।

पूरी तरहसे कर्तव्य पालन करते चलो और उसका रस लेते चलो। अच्छा काम करना स्वयंमें परमानन्द है। घरको स्वच्छ करना भी कितने सुखकी बात है। रुईको स्वच्छ करना, लोहेको स्वच्छ करना या मिट्टीको स्वच्छ करना, यह भी एक वहुत वढ़िया काम है। कर्म माने स्वच्छताका सम्पादन और अपने अन्तःकरणको स्वच्छ करना है। जिस समय अन्तःकरण स्वच्छ होगा हृदयमें परमानन्दका आविर्भाव होगा। अन्तःकरणकी मलिनता ही आनन्दके आविर्भावमें बाधक है। वासना होती है कि हमको यह चाहिए—यह चाहिए। वह वासना आच्छादित कर देती है, जैसे वस्त्रसे कोई चीज ढँक जाती है, वैसे ही अन्तःकरणमें वासनाओंका उदय होनेसे अन्तःकरणाविच्छिन्न जो चैतन्य है यह आवृत हो जाता है—ढँक जाता है। इसलिए कर्ममें ज्ञान भी रहे, कर्ममें आनन्द भी रहे और कर्म ठीक ढंगसे पूरा हो।

तो फिर वासना छुड़ानेकी विधि क्या बतायी कि **मय्यासक्त-मनाः**। यदि हमारे मनमें परमेश्वरके प्रति प्रेम है, तो हम अपना काम ठीक करेंगे और यदि पक्षपात होगा मनमें और क्रूरता होगी तो रागद्वेष होगा तथा अपना कर्म ठीक नहीं कर सकेंगे। इसलिए संसारके रागद्वेषको मिटानेके लिए परमेश्वरमें

प्रीति चाहिए। **मय्यासक्तमनाः**। प्रीति करो परमेश्वरसे, तो संसारमें रागद्वेष नहीं होगा। संसारमें राग होगा तो दिल रंगीन हो जायगा। फिर तो जिससे राग है वही वही दीखेगा। यदि द्वेष होगा तो अन्तःकरणमें आग लग जायेगी, जलन हो जायेगी। ज्वलनात्मक चित्तवृत्तिका नाम द्वेष है और रञ्जनात्मक चित्तवृत्ति-का नाम राग है। अन्तःकरणको किसी रंगमें रँग देना राग है और अन्तःकरणमें आग लगा लेना, जलन पैदा कर लेनेका नाम द्वेष है। दोनों स्थितियोंमें अपने जो पाँव पड़ते हैं वे गलत हैं।

अब दूसरी बात—आसक्ति हो भगवान्‌से और आश्रय हो भगवान्‌का। कर्म कर्मका फल नहीं देता, भगवान् कर्मका फल देता है। मुनीम प्रेम करता है पुत्रसे, पत्नीसे, शरीरसे, और आश्रय रखता है सेठका! उसका दिल दुहरा हो गया। आप आश्रय भी रखिये परमेश्वरका और प्रेम भी कीजिये परमेश्वरसे। यदि आश्रय दूसरा रहेगा और प्रेम दूसरेसे रहेगा तो प्रेम द्विधा-विभक्त हो जायेगा। तो तीन बातें कहीं—कर्ताके सम्बन्धमें। अब बोलते हैं—

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु। (७.१)

ज्ञानमें दो बातें होनी चाहिए। **असंशय और समग्र**। ज्ञातामें सन्देह नहीं रहना चाहिए और वस्तुका अधूरा ज्ञान नहीं होना चाहिए। यदि आपको ज्ञान भी है और संशय भी है तो आप जैसे सपना देख रहे हैं। ज्ञान सुनिश्चित होना चाहिए—

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।

ज्ञास्यसि क्रियाके दो विशेषण—एक **असंशयं** और एक **समग्रं**। तो असंशय है अपना अन्तःकरण, अपने अन्तःकरणमें संशय नहीं होना चाहिए और समग्रं है विषय। जिस विषयको तुम जानते हो, उसकी पूरी जानकारी प्राप्त करो। वह समग्रं हो। उसमें ज्ञान,

बल, वीर्य ऐश्वर्य जो कुछ है उसका वह वैभव भी जानो, उसका जो स्वरूप है वह भी जानो। पानी क्या है यह भी जानो और उससे वर्फ कैसे बनता है यह भी जानो। दूध क्या है, यह भी जानो। उससे दही, मलाई, रबड़ी, छेना कैसे बनता है, यह भी जानो। एक दूध है एक दूधका वैभव है।

तो वस्तुको भी जानना चाहिए और वस्तुकी विभूतिको भी जानना चाहिए तभी उसका समग्र ज्ञान होता है। परमेश्वर-को भी जानो और उसके वैभवको भी जानो। दसवें अध्यायमें परमेश्वर और परमेश्वरकी विभूतिका वर्णन है। समग्र ज्ञान माने विभूति सहित परमेश्वरका ज्ञान तथा **असंशयं** माने अपने मनमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिए।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।

आपके मनमें सन्देह बना हुआ है—इधर जायें कि इधर जायें? आगे क्या मिलेगा, पीछे क्या छोड़कर आये हैं? कई लोग चलते हैं आगे और देखते हैं पीछे। वे गिर पड़ते हैं। भूतकी ओर ज्यादा दृष्टि जाना यह गिरनेका पूर्व रूप है। वह आदमी आगे बढ़ नहीं सकता जो पीछेकी ओर ज्यादा देखता है। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, वर्तमानको देखो और आगे बढ़ो। जो हो गया सो हो गया और आगे जो आवेगा उससे निपटेंगे।

हम वर्तमानमें यदि ठीक हैं तो हमारा भूत भी ठीक हो जायेगा। जो बीतता जायेगा, वह भी ठीक होता जायेगा और जो आता जायेगा, वह भी वर्तमानके रास्तेसे आवेगा और ठीक हो जायेगा। इसलिए अपने वर्तमानको **योगं युञ्जन्**—वर्तमानको ठीक करो और वह असंशय हो। संशय—यह सोनेके अर्थमें ही होता है। **शिञ्स्वप्ने, सम्यक् शयनं संशयः।** भलीभाँति सो रहे हैं और देख रहे हैं कि अमुक देशमें चले गये,

अमुक कालमें चले गये। मनोराज्य बढ़ता है। संशयमें मनोराज्य बहुत होता है और निश्चयमें मनोराज्य नहीं होता।

नियोजितं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।

निश्चय कर लो हमें यह करना है। इस वस्तुका स्वरूप यह है, जो निर्णयमें विलम्ब करते हैं, सफलता उनसे दूर छूट जाती है। बहुत सोच-विचारकर निर्णय करनेमें कर्तव्य-पालनका समय बीत जाता है। इसलिए निर्णय और निश्चय यह तत्काल हो जाना चाहिए। **संशयात्मा विनश्यति।** संशय अपने मनमें नहीं रहना चाहिए। तो परमेश्वरका ज्ञान हो, असंशय और वह ज्ञान कैसा हो कि समग्र परमेश्वरका हो। समग्र परमेश्वरका अर्थ यह नहीं है जैसा कि कई लोग मन्दिरमें, मूर्तिमें, मसजिदमें या अपने इष्टमें परमेश्वरको सीमित करके देखते हैं। असलमें परमेश्वर असीम है।

परमेश्वर पृथिवी है। परमेश्वर जल है। परमेश्वर तेज है। परमेश्वर वायु है। परमेश्वर आकाश है। परमेश्वर सूर्य है। चन्द्रमा है। परमेश्वर अपना आत्मा है।

ऐसी कोई चीज नहीं है जो परमेश्वरका स्वरूप न हो। समग्र रूपमें परमेश्वरको निर्गुण निर्विशेषमें डाल देना ज्ञानकी एक प्रणाली है और परमेश्वरको एक रूपमें बाँध देना, उपासनाकी एक प्रणाली है। परन्तु जब हृदयमें समग्र परमेश्वरका ज्ञान हुआ तो समग्र परमेश्वर हो गया।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः।

यह परमेश्वरका स्वरूप है। निर्गुण नहीं, मन्दिरमें नहीं। **यतः प्रवृत्तिर्भूतानां**—जो सबके हृदयमें चेतन अन्तर्यामीके रूपमें

रहकर प्रवृत्त करता है, जिसके होनेसे आँखें देखती हैं; जिसके होनेसे जीभ बोलती है, जिसके होनेसे कान सुनता है; जिसके होनेसे पाँव चलते हैं, हाथ काम करते हैं, वह परमेश्वर है। जिसके होनेसे मन संकल्प करता है, जिसके होनेसे बुद्धि विचार करती है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। जैसे कपड़ेमें सूत है वैसे ही यह सम्पूर्ण विश्व उनसे भरपूर है। पहले बताया है निमित्त कारण **यतः प्रवृत्तिर्भूतानां**। सबकी प्रवृत्तिका निमित्त है वह और **येन सर्वमिदं ततम्**—सबका जो उपादान है। जैसे जेवरमें सोना, जैसे घड़ेमें मिट्टी, जैसे औजारमें लोहा अर्थात् अभिन्न निमित्तोपादान कारण है परमेश्वर। यह उसका है समग्र रूप।

अब पूजा उसकी कैसे करना। **स्वकर्मणा**—आपके जिम्मे जो काम है—कोई झाड़ू लगाकर मन्दिरमें पूजा करता है, कोई फूल चढ़ाकर करता है, कोई चन्दन लगाकर करता है, कोई भोग लगाकर करता है—यह सब-की-सब पूजा है। तो आपके जिम्मे जो पूजा है—वेद पाठ करके आप पूजा कीजिये, पहरा देकर आप पूजा कीजिये या सामग्री प्रस्तुत करके आप पूजा कीजिये, लोगोंको अन्न मिले, वस्त्र मिले, यह भगवान्‌की पूजा है। काम अपनी पूजाके लिए करते हो या ईश्वरकी पूजाके लिए करते हो। काम तो वही करना है जो लोग व्यक्तिगत सुख स्वार्थके लिए करते हैं। वे अपने अहंभावकी पूजाके लिए करते हैं और जो सर्वरूप परमेश्वरकी सेवा-पूजाके लिए करते हैं, उनके द्वारा भक्ति सम्पन्न होती है।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य। वही जो अभिन्न निमित्तोपादान कारण है सबमें, उसकी पूजा करो—कैसी पूजा करो कि अपने

कर्मके द्वारा पूजा करो, अपना कर्तव्य पूरा करो। इससे क्या होगा—**सिद्धि विन्दति मानवः।** इस पूजाका अधिकारी कौन मनुष्य ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये विभाग नहीं हैं। मानवः—जो भी मनुष्य है वह यह पूजा कर सकता है और किस प्रकार कर सकता है ? अपने कर्मसे कर सकता है। ईश्वरकी पूजा करो। देखो जब एक व्यक्ति अपने शरीरको इसलिए सजाता है कि मुझे सजा हुआ देखकर मेरा प्रियतम प्रसन्न होगा तो उसके वस्त्र पहननेमें भी, बाल सँवारनेमें भी, चिकना-चुपड़ा होनेमें भी, अपने प्रियतमकी पूजा है। आप जो भी काम करो, यह देखकर करो कि इससे अन्तर्यामी परमेश्वर प्रसन्न होगा कि नहीं। सबका अन्तर्यामी और मेरा अन्तर्यामी एक है।

कर्म करनेकी पद्धति यह है और इस पूजासे क्या होगा ? 'मदाश्रयः' अहंभाव टूट जायेगा। यह पुलिसका आश्रय है, यह सरकारका आश्रय है, यह सेनाका आश्रय है, यह समाजका आश्रय है आदि सब आश्रय—अन्याश्रय है। परमेश्वरके आश्रय-का अर्थ है अपने अन्तर्यामीको दिखा-दिखाकर, उनसे पूछ-पूछकर, उनकी प्रसन्नताके लिए काम करते चलो। आश्रय है परमेश्वरका प्रेम है परमेश्वरसे, कर्तव्य हो रहा है पालन। इससे परमेश्वरका, ज्ञान होगा। यह भी परमेश्वर, यह भी परमेश्वर। सामने चाहे कुछ भी हो सब परमेश्वर। अपने हृदयमें परमेश्वराकार वृत्तिका उदय हो तब परमात्माका ज्ञान होगा। भगवान् प्रतिज्ञा करते हैं—जिस वस्तुका वर्णन करना है उसकी महिमा बताता हूँ अभिमुख करनेके लिए। आइये सुनिये अर्जुन, **ज्ञानं तेऽहं सवि-ज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।** वक्ष्यामि क्रियापद दो धातुओंसे बनता है। एक तो वक्ष्यामि माने वर्णन करूँगा। दूसरा वह प्राप्नेमें बनता है अर्थ है—प्राप्त कराऊँगा। वक्ष्यामि जैसे जिस धातुसे

बनता है वर्तमानमें, भविष्यमें वक्षामि क्रियापद बनता है उसी धातुसे। जैसे योगक्षेमका वहन भगवान् करते हैं वैसे भगवान् कहते हैं—'मैं ज्ञान तो तुम्हारे पास ढोकर पहुँचा दूँगा।' वक्ष्यामि ज्ञानके लिए। [तुम जरा शान्त हो जाओ, तुम सुनो, मैं तुम्हें ज्ञान, अपने हृदयका ज्ञान शब्दपर आरूढ़ करके, कानके द्वारा तुम्हारे हृदयमें पहुँचा रहा हूँ। यह कैसा ज्ञान है—सविज्ञानम्। विज्ञान और ज्ञान दोनों। विज्ञान और ज्ञान दोनों क्या है?

देखो गीतामें एक तो ब्राह्मणके स्वभावमें ज्ञान विज्ञान दोनोंका उल्लेख है। **ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं** (१८.४२) ज्ञान और विज्ञान। यह **ब्रह्मकर्म स्वभावजं**-जिसके अन्दर ब्राह्मणत्वका बीज है उसके स्वभावसे ज्ञान और विज्ञान प्रकट होते रहते हैं। जैसे अग्निका स्वभाव है प्रज्वलन, दाहन, वैसे ब्राह्मणत्व जो है वह ज्ञान और विज्ञानके रूपमें प्रकट होता है। ज्ञान क्या है? वेदका ज्ञान है, कर्मकाण्डका ज्ञान है, धर्मका ज्ञान है और विज्ञान माने उसके आचरणकी प्रणाली—प्रयोगात्मक ज्ञान।

प्रयोगात्मक ज्ञानका अर्थ ऐसे होता है, जैसे कोई स्त्री है वह 'होमसाइंस' पढ़ लेती है। यह तो ज्ञान हुआ, लेकिन किसी रसोई बनानेवालेके साथ रहकर यदि उसका प्रयोग करके देख ले तो यह उसका विज्ञान हो गया। कहा है कि—**विज्ञानं शिल्पनैपुण्यम्।**

एक आदमी डाक्टरी पढ़ता है। ज्ञान हो गया। परन्तु एक डाक्टरके साथ रहकर उस विद्याका प्रयोग कर लेता है—यह विज्ञान हो गया। एक वकील वकालत पढ़ता है, कानूनी ज्ञान प्राप्त करता है, लेकिन जब किसी बड़े वकीलके साथ रहकर प्रैक्टिस कर लेता है तब उसको विज्ञान हो जाता है।

तो ब्राह्मणको ब्राह्मणोचित, क्षत्रियको क्षत्रियोचित, वैश्यको वैश्योचित तथा शूद्रको शूद्रोचित, ये विभाग हैं। कर्म सम्बन्धी ज्ञान, रक्षा सम्बन्धी ज्ञान और वस्तु सम्बन्धी ज्ञान जीवनके लिए आवश्यक है। धर्मका, संस्कृतिका और ब्रह्मका ज्ञान भी आवश्यक है। यदि इस ज्ञानको विभागपूर्वक प्राप्त करेंगे तो अपने अपने विषयमें बिल्कुल ठीक-ठीक ज्ञान होगा और यदि गड़बड़ कर देंगे थोड़ा इधर, थोड़ा उधर कर देंगे, तो किसी विषयका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होगा। इसीलिए विभागपूर्वक ज्ञान होना चाहिए। **विज्ञानं शिल्पनैपुण्यम्** प्रयोगात्मक ज्ञान-विज्ञान यह ब्राह्मण हुआ।

देखो एक तत्त्वज्ञानका भी प्रसंग है। **ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।** नवम अध्यायके प्रारम्भमें भगवान्ने कहा—मैं विज्ञान सहित ज्ञानका वर्णन करता हूँ। वहाँ दूसरा ही स्वरूप बताया। एक परोक्ष ज्ञान और एक अपरोक्ष ज्ञान।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः (९.४)
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् (९.५)

यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् (९.१) एक ऐसा ज्ञान है जिसके ज्ञान मात्रसे ही अशुभसे संसारसे मुक्ति हो जाती है। यह अशुभ है संसार। हम अपने मैंको भूल गये। मैंके भीतर जो परमात्मा है, उसको भूल गये। जो सामने दीखता है, उसमें आविष्ट हो गये। वृत्तिसारूप्य हो गया। देखो मनुष्यका क्या स्वभाव है, हम सब लोगोंका अनुभव है कि जब क्रोध आता है तो हम क्रोधसे एक हो जाते हैं और मैंकी श्रेष्ठता, चेतनता, क्रोधमें आरोपित हो जाती है और तब हम कहते हैं हमारा क्रोध बिल्कुल ठीक है। क्योंकि 'मैं' तो बिल्कुल ठीक है। अब वह क्रोधसे मिल गया तो क्रोध भी बिलकुल ठीक मालूम पड़ने लगा।

जो नहिं करौं दंड सठ तोरा।
भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा ॥
(रामचरितमानस उत्तर काण्ड)

हमारा क्रोध बिलकुल ठीक है और हम तुमको इसका दण्ड देंगे। तुमने गलत काम किया है। फिर घण्टे-दो-घण्टेके बाद क्रोध उतर गया। क्रोध उतर गया तो सोचते हैं—अरे हम तो क्रोधके आवेशमें आगये! क्रोधमें आविष्ट हो गये थे। जो भले लोग होते हैं, उनको अपने क्रोधपर पश्चात्ताप होता है कि हमने क्रोध गलत किया। इसी तरह जब काम आता है मनमें तो यह लगता है कि यदि हम यह भोग नहीं करेंगे तो हमारा जीवन व्यर्थ है। लेकिन जब कामका आवेश शान्त हो जाता है तब अलग हो जाते हैं उससे। अरे इतनी देर तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। हम बेहोश हो गये थे।

क्रोधमें, काममें, लोभमें ऐसा आवेश हो जाता है कि लगता है कि यह चीज हमें नहीं मिलेगी तो हमारा जीवन ही क्या है। लोभमें आगये, लोभसे एक हो गये, लोभ अच्छा लगा। लोभके वश होकर हमने चोरी, बेईमानी कर ली। मोह है—मोहमें आविष्ट हो जाते हैं।

यह मेरी पार्टी है। ऐसे समझो कि जब पार्टी छोड़ते हैं तो पचास दोष उसमें बतायेंगे और जबतक पार्टीमें हैं तबतक वह बिलकुल दूधकी धुली है। जब पार्टीसे एक हो गये दो पार्टीके दोष नहीं दिखते, गुण दिखते हैं। क्योंकि आत्मा तो सर्वश्रेष्ठ है ही और जब पार्टीसे अलग होते हैं तो उसमें दोष दिखने लगता है।

तो यह कामका, क्रोधका, लोभका, मोहका, आवेश होता है कि हम अपनेको दूसरेसे मिला देते हैं। जैसे भूत चढ़ बैठा हमारे

ऊपर। जैसे ज्वर चढ़ बैठा हमारे ऊपर। ऐसे ये मानसिक रोग आते हैं और हम अपनेको रोगी बना लेते हैं।

अब आओ, आप ज्ञान विज्ञान—अपने स्वरूपको जानो और कैसे दूसरोंके साथ मिल जाते हो, इसपर विचार करो। परोक्ष ज्ञान जो होता है वह होता है—**मत्स्थानि सर्वभूतानि** और अपरोक्ष ज्ञान होता है—**न च मत्स्थानि भूतानि**। यह सम्पूर्ण विश्व-सृष्टि किसमें है? परमेश्वरमें है। ऐसा हम यहाँ बैठकर सोचते हैं। लेकिन जब परमेश्वरसे एक हो जाते हैं तो परमेश्वरमें कोई सृष्टि नहीं है। परमेश्वरके सिवा कोई दूसरी वस्तु नहीं है। एकके विज्ञानसे सर्वका विज्ञान। यह प्रतिज्ञा है, यह दृष्टि है, यह दर्शन है। **अहं वक्षाम्यशेषतः**। लो यह ज्ञान अशेषतः, अर्जुन, मैं कुछ छिपाकर नहीं रखूँगा। अशेषतः पूरा-का-पूरा तुमको बताऊँगा। शेष नहीं रखूँगा। सबका सब तुम्हें बताऊँगा। इस ज्ञानकी महिमा क्या है?

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते (७.२)

इसको यदि तुम जान लो—ऐसी प्रतिज्ञा कौन करेगा? बोलो। अर्जुन कहते हैं—

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते (६.३९)

तुम्हारे सिवा इस संशयको मिटानेवाला और कोई है ही नहीं और भगवान् कहते हैं—

'मैं ऐसा ज्ञान तुमको बताऊँगा कि इसको जान लेनेके बाद दूसरा कुछ जाननेको शेष नहीं रह जाता।'

यह हमारे श्रुति-ज्ञानकी विशेषता है। यह दूसरे किसी मजहबमें नहीं है। कोई भी साइंस यह नहीं कह सकता कि अब इसके आगे कुछ नहीं जाना जा सकता। क्योंकि उसके

ज्ञातव्य अनेक हैं। एक-एक अणुमें-से इनकी शक्तियाँ निकलती हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती। एक बीजमें-से इतने वृक्ष निकलते हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती।

बड़का एक बीज ले लो। उस बीजमें-से बड़का एक पेड़ होगा और उसमें करोड़ों बीज होंगे। करोड़ों बीजोंमें सैकड़ों, हजारों और बीज होंगे, उनसे वृक्ष पैदा होंगे, कोई गणना नहीं कर सकता। बहुत्वकी गिनती कभी पूरी नहीं हो सकती, लेकिन एकत्वकी गिनती पूरी हो सकती है।

यह श्रुतिकी प्रतिज्ञा है—**अस्मिन् दृष्टे श्रुते मते सर्वं दृष्टं श्रुतं मतं विज्ञातं भवति।** एक ऐसी चीज है, जिसको आप देख लें, जिसे आप सुन लें, जिसपर आप विचार कर लें, जिसका विज्ञान आप प्राप्त कर लें, तो सब कुछ दृष्ट, श्रुत, मत, विज्ञान हो जाता है। **कथं मे एतद् भवति**—ऐसा कैसे होता है?

उपनिषद्‌में यह प्रश्न उठाया है। श्वेतकेतु बड़ा भारी अभिमानमें भरकर आया था कि मैंने सब विद्या पढ़ ली है। पिताने पूछा—'क्यों बेटा, तुमने वह विद्या जानी जिसमें एकके ज्ञानसे सबका ज्ञान हो जाता है? ऐसा कैसे हो सकता है? मिट्टीके ज्ञानसे सब मृण्मयका ज्ञान, लोहेके ज्ञानसे सब लोहमयका ज्ञान, स्वर्णके ज्ञानसे सब स्वर्णमयका ज्ञान। एक ऐसी वस्तु है जिससे यहाँ सबका विस्तार हुआ है इधरसे देखो तो बहुतोंमें एक है, परन्तु यदि उस एकसे एक हो जाओ तो बहुत नहीं है।'

सब मुझमें है और मुझमें कुछ नहीं है। सबकी दृष्टिसे सब मुझमें है। मेरी दृष्टिसे मुझमें कुछ नहीं है। तो जब उस सबका ज्ञान होगा—परमेश्वरका ज्ञान होगा तो जाननेके लिए कुछ शेष रहेगा ही नहीं। ये देखो श्याम, ये देखो श्याम, श्याम ही श्याम। वृक्षके रूपमें कौन आया है? परमेश्वर। पुरुषके रूपमें कौन

है, परमेश्वर। स्त्रीके रूपमें कौन है? परमेश्वर। यह देखो हमारा विज्ञान। रागद्वेषकी आत्यन्तिक निवृत्ति! त्वं स्त्री त्वं पुमानसि—तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष हो। तुम कुमार हो, तुम्हीं कुमारी हो। वृद्धके रूपमें हाथमें डण्डा लेकर तुम्हीं घूम रहे हो। यह है परमेश्वरका रूप और इसके बिना यदि यह कहोगे कि आधा संसार और आधा परमेश्वर तो या तो संसारमें ही रहोगे—उसमें राग-द्वेष, अच्छा-बुरा ढूढ़ते रहोगे और या तो परमेश्वरकी भक्ति आयेगी और संसारसे द्वेष हो जायेगा।

जब परमेश्वरके सिवा और कुछ नहीं है तो भक्ति विभक्ति नहीं। सब परमेश्वरका अनुभव है और कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं है। परन्तु यह ज्ञान बहुत दुर्लभ है, ऐसा बताया है। यह मनुष्यकी प्रवृत्ति दो तरहका होती है। कोई-कोई व्यक्ति तो ऐसे होते हैं कि यह चीज दुर्लभ है तो इसके लिए प्रयास कौन करे? परन्तु कोई-कोई व्यक्ति ऐसे होते हैं कि वे सुलभके लिए प्रयास नहीं करते। अरे यह तो सबको मिलता है।

इसीसे भगवान् अपनेको सुलभ और दुर्लभ दोनों बताते हैं। भगवान्की भक्ति कठिन है या सुगम है। रघुपति भगति करत कठिनई। भगवान्की भक्ति करना बहुत कठिन है। तब एक व्यक्तिके मनमें उत्साह आया—इस कठिनको हम करके दिखायेंगे, परन्तु दूसरे लोग बोले-जब कठिन है तो हम क्यों इस रास्ते पर जायें?

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न जप तप मख उपवासा॥

यह तो कुछ कठिन ही नहीं है इसमें तो कोई प्रयास ही नहीं है। ईश्वरकी भक्ति सुगम है कि दुर्लभ? बोले जो दुर्गम मान-

कर उसे पानेका प्रयास करनेवाले हैं, उनको दुर्गम बता दिया। तुम चलो, तुम्हारे उत्साहकी जरूरत है, साहसकी जरूरत है—चलो आगे और जो लोग सुगम मानते हैं कि हमको तो सुगम चाहिए तो लो उनके लिए सुगम है।

यह सुगम-दुर्गम कुछ नहीं होता। जिस मार्गसे चलनेका अभ्यास हो जाता है वह सुगम हो जाता है और जिस मार्गपर हम नहीं चलते हैं, वह बड़ा कठिन मालूम पड़ता है। कठिन और सुगम कुछ नहीं है। आप उस मार्गपर चलिये, कठिन सुगम हो जायेगा। सुगम कठिन हो जायगा। यदि ठीक नहीं चलेंगे तो सुगम भी कठिन हो जायगा। अपने कर्त्तव्य पालनके मार्ग पर बिलकुल ठीक-ठाक चलना चाहिए।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ (७.३)

अब बताते हैं, मनुष्य शरीर मिलना आसान नहीं है। आप देखते हैं कि दुनियामें कितने शरीर हैं। केवल धरती छेद करके जो उगनेवाले बीज हैं, उनकी गिनती करना कठिन है। कितने तरहके पेड़ पौधे होते हैं। ये भी सब जीव हैं। जो पसीनेसे पैदा होते हैं—जैसे खटमल हैं। ये कितने हैं ? इनकी गिनती करना भी कठिन है। जो अण्डेसे पैदा होते हैं—चींटीसे लेकर गरुड़ तक, हंस तक, इनकी भी गिनती करना कठिन है। जो जरायुसे परिवेष्ठित पैदा होते हैं, पशु हैं, मनुष्य हैं, चतुष्पाद हैं, द्विपाद हैं, उनकी गिनती करना भी कठिन है। अब चतुष्पाद जो होते हैं उनके पास कर्म करनेका, विधिपूर्वक कर्म करनेका साधन नहीं है। इनको कर्म तो करना है परन्तु विधि-निषेधपूर्वक नहीं। परन्तु मनुष्य शरीर जो हैं उसके बढ़िया दो हाथ प्राप्त हुए हैं

और जैसे वज्रमें, चक्रमें मोड़ होते हैं—इन्द्रके वज्रमें सौ मोड़ होते हैं। माने उसको एक बार चलाया जाये तो सौ निशाने मारकर वह लौट आयेगा। सौ जगहसे मुड़ सकता है। शतार बोलते हैं उसको और विष्णु भगवान्‌का चक्र है उसमें हजार अरे होते हैं—वह है सहस्रार। वह एक हजार कैसे बनते हैं इसका वर्णन भी शास्त्रोंमें प्राप्त होता है। वह घूमकर हजार निशाने मारकर और फिर विष्णु भगवान्‌के हाथमें लौट आता है। वह सहस्रार है।

अब हमारे हाथमें देखो कितने मोड़ है। अंगुलियाँ कितनी जगहसे मुड़ती हैं। यह हमारा पहुँचा कैसे मुड़ता है। अँगुली कितनी जगहसे मुड़ती है। इतने मोड़ है कि आपको जो करना हो काम—किसीके कलेजेके भीतर अँगुली डालकर ऑपरेशन कर लेते हैं, वहाँ क्या है उसको देख लेते हैं। जो चाहिए सो पकड़ लीजिये, कलम भी चलाइये, तलवार भी चलाइये, बन्दूकसे गोली भी मारिये, घूसा भी लगाइये, होम भी कीजिये, कर्मकी कितनी शक्ति मनुष्यके हाथमें है। लेकिन है यह हाथ लोगोंको हँसाने के लिए—**हस्यते हनेन**। हाथ किसको बोलते हैं ? हाथकी एक व्युत्पत्ति यह है कि जिससे मनुष्यका जीवन आनन्दमय हो जाये, प्रसन्न हो जाये। ऐसे-ऐसे काम करनेके लिए यह हाथ बना है।

यह मनुष्यके ही ऐसे हाथ हैं। बन्दर, वनमानुषके हाथ भी जैसे नहीं हैं। यह मनुष्य शरीरकी विशेषता है। आपको यह हाथ मिला है। अपनेको और दूसरेको ठीक-ठीक सुख देनेके मार्गपर हाथ चलाइये और चलिये। यह हाथ इसलिए बना है और देखो संसारके और जो प्राणी होते हैं जैसे पेड़ हैं, ये नीचेसे भोजन लेते हैं और ऊपरको बढ़ते हैं। पशु-पक्षी आगेसे भोजन

लेते हैं और उनका भोजन पीछेको जाता है। तिर्यक् योनि उनको बोलते हैं और इनको उर्ध्वस्रोत बोलते हैं। मनुष्य अधः स्रोत है, माने खाता है ऊपर और उसका भोजन जाता है नीचे।

इसका अभिप्राय यह है कि प्रकृतिने अपनी उन्नतिके अनुरूप मनुष्य तो उन्नत बना दिया है, खड़ा कर दिया है, हाथ दे दिये हैं। अब प्रकृति जो भोग देती है, वह भोग अधोगामी हो जाता है, इसलिए आप प्रकृतिके सिरेपर पहुँच गये हैं। अब यहाँसे थोड़ा-सा प्रयास करके प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त हो जाइये और यदि आप इस बन्धनसे मुक्त होनेका प्रयास नहीं करेंगे तो फिर अगर उत्तम कर्म करेंगे तब मनुष्य-योनि मिलेगी और गलत काम करेंगे तो पशु-योनिमें, पक्षी-योनिमें, वृक्ष-लता आदिकी योनिमें जाना पड़ेगा। इसलिए यह मनुष्य-योनि सर्वश्रेष्ठ है। यह श्रद्धा और मनुकी सन्तान है। श्रद्धा और मनन ये दो मनुष्य-योनिकी विशेषताएँ हैं। श्रद्धा माता है।

श्रद्धा मातेव योगिनं पाति। श्रद्धा माताकी तरह योगीकी रक्षा करती है और मननमें नवीन-नवीन स्फुरणाका सामर्थ्य है। आप देखते हैं कि यह पक्षी हजारों वर्ष पहले जैसा घोंसला बनाते थे वैसा ही आज भी बनाते हैं। इन लोगोंने 'साइंस'से नहीं सीखा कि हम लोगोंको घोंसला कैसे बनाना चाहिए। घोड़ा जैसे पहले रहता था, वैसे ही अब रहता है। गाय जैसे पहले रहती थी, वैसे अब भी रहती है। उन्होंने अपने लिए कपड़ा नहीं बनाया, अपने लिए मकान नहीं बनाया, अपने लिए भोजन पकानेकी विधि नहीं प्राप्त की।

ये जो पशु हैं, ये जो पक्षी हैं, वे अपनी परम्परामें, अपने संस्कारमें बंधे हुए हैं, निगड़ित हैं। मनुष्य मननशील है, यह विचार करता है। यह नयी-नयी सुगन्ध निकालता है। यह

नया-नया स्वाद निकालता है। यह नया-नया रूप निकालता है। यह नया-नया स्पर्श निकालता है। यह नयी-नयी ध्वनियाँ निकालता है। ध्वनिके द्वारा बातचीत, स्पर्शके द्वारा बातचीत, रंगके द्वारा बातचीत, यह हरी झंडी, यह लाल झंडी, यह सब मनुष्यकी ही निकाली हुई हैं। वैज्ञानिक आविष्कार—नव-नव आविष्कार—करनेका सामर्थ्य केवल मनुष्य-योनिमें है और दूसरेमें है नहीं। तो देखो बनावटमें नवीनता है, बुद्धिमें नवनवोन्मेषशीलत्व है। नयी-नयी बात पैदा होती है और आनन्द लेनेके लिए नया-नया तरीका निकलता है। तो सत्ताकी दृष्टिसे चेतनाकी दृष्टिसे, आनन्दकी दृष्टिसे, यह मनुष्य एक परिपूर्ण जाति है। मनुष्य जाति है; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह जाति नहीं है, यह वर्ण है। आकृति देखकर जिसका ज्ञान हो उसको जाति बोलते हैं। सब मनुष्य एक आकृतिके होते हैं और वर्णनसे जिसका ज्ञान हो, उसको वर्ण बोलते हैं। **वर्णनात् वर्णः**। वर्णनसे बताना पड़ेगा ये ब्राह्मण हैं, ये विद्वान् हैं, ये क्षत्रिय हैं। परन्तु मनुष्यत्व-रूप आकृति सबमें होती है। चातुर्वर्ण्य शास्त्रैकगम्य है, मनुष्य इन्द्रियगम्य है।

मनुष्याणां सहस्रेषु—मनुष्य, मनुष्य है। यह अपने जीवनका निर्माण करता है। यह अपने ज्ञानका निर्माण करता है। यह अपने आनन्दका निर्माण करता है—इसको मनुष्य बोलते हैं। **मनसा सीव्यति**—यह मनसे अपने बन्धनको जोड़ता है। निरुक्तमें मनुष्य शब्दका अर्थ ऐसा है। पाणिनीय व्याकरणमें तो मनुष्यका शब्द ऐसा है **मनो : अपत्यं मनु + यत् षुक आगम** जो मनुकी सन्तान है। श्रद्धा और मननसे पैदा हुआ। किन्तु निरुक्तका कहना है कि यह मनसे सम्बन्ध जोड़ता है। पशु भूल जाता है कि यह मेरी माँ है, पशुको बड़ा होनेपर अपनी माँकी, पिताकी पहचान नहीं होती है।

न पशु पहचानता, न पक्षी पहचानते, न स्वेदज पहचानते, न उद्भिज पहचानते कि यह हमारी माँ है, यह हमारा पिता है, यह हमारा गुरु है, यह हमारा सखा है। विलकुल पहचान उनकी छूटती जाती है।

परन्तु मनुष्य एक सवन्ध जोड़ता है। एक तो भोगका सम्वन्ध होता है। जैसे भोग देशोंमें है। माँ वापने बच्चे पैदा कर दिये, वे पढ़े लिखे, वड़े हुए, विवाह हुआ और मियाँ-बीवी विलकुल अलग। पति-पत्नी चले गये और पिता-माताका कोई ख्याल नहीं है। भोगसंस्कृतिमें पति-पत्नीका सम्बन्ध तो होता है। वह भी भोग-पर्यन्त ही होता है, बादमें टूट जाता है और भारतवर्षंको संस्कृतिकी विशेषता है धर्म-सम्वन्ध। धर्म-सम्बन्ध-धर्म-संस्कार। माताकी सेवा करना, पिताकी सेवा करना, पुनर्जन्म भी मानते हैं न! देहके पहले भी थे, देहके बाद भी रहेंगे। इसलिए सम्बन्ध मानते हैं। अपने पितरोंको भी तृप्त करते हैं और अगली पीढ़ीके साथ भी अपना संस्कार जोड़ते हैं। तो पिता-पितामहका जो सम्वन्ध है, वह भी धर्म संस्कारमें आता है और अगली पीढ़ीका जो निर्माण है—वह कैसे आता है। गर्भाधान भी एक संस्कार है, सीमन्तोन्नयन भी एक संस्कार है, जातकर्म भी एक संस्कार है।

जो हमारी अगली पीढ़ी आवे वह भी संस्कार-सम्पन्न हो। इसलिए गर्भाधानके दिनसे ही चेष्टा करते हैं। उसमें भी धर्मके अनुसार गर्भाधान हो, धर्मके अनुसार उसका सम्वर्धन हो, धर्मके अनुसार प्रजनन हो और धर्मके ही अनुसार उसके और संस्कार कराये जायँ—चौल कर्म हो, कर्णवेध हो, यज्ञोपवीत-संस्कार हो, ये सब धर्मके अनुसार हों। धर्म-देशकी संस्कृतिमें और भोग-देशकी संस्कृतिमें अन्तर होता है और यह मनुष्य केवल भोगके

लिए पैदा नहीं हुआ, यह धर्मके लिए पैदा हुआ है। धर्मके लिए माने अपनी जो उच्छृङ्खल प्रकृति है, उसको नियमित करनेके लिए। इसलिए इसको मनुष्य कहते हैं।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

हजार-हजार मनुष्य हैं। उनमें-से सिद्धिके लिए अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए। लोग बाहर भोग बहुत मिले, सुविधा बहुत मिले, इसके लिए प्रयास करते हैं। परन्तु हमारा दिल अच्छा बना रहे, इसके लिए प्रयास नहीं करते। शुद्धि माने अन्तःकरणकी शुद्धि।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

यदि अपने कर्मको अपनी पूजाके लिए, अपने रिश्तेदारोंकी पूजाके लिए करोगे तो सिद्धि प्राप्त नहीं होगी, माने अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होगी। यह देखना है कि हम अपने दिलकी सफाई करते हैं कि नहीं। हमने ऐसे लोगोंको देखा है जो बाल बहुत बढ़िया रखते हैं, जो मुँहको बहुत साफ रखते हैं, लेकिन जो अंग उनके वस्त्रसे ढँके रहते हैं, उनको गन्दा रखते हैं। उनकी सफाईका ख्याल नहीं करते। लोगोंको कुक्षिमें, जोड़ोंके नीचे बहुत रोग होते हैं।

एक सज्जनको काँखमें रोग हो गया। डाक्टरने बताया—ये अपने ढँके हुए अंगोंकी परवाह नहीं करते, इनको स्वच्छ नहीं रखते। इसलिए काँखमें रोग हो गया, फोड़े हो गये। चामसे, खूनसे, चर्बीसे, हड्डीसे ढँका हुआ जो हमारा अन्तःकरण है। लोगोंको दिखानेके लिए हम बाहरके शरीरको तो बहुत चिकना चुपड़ा रखते हैं, परन्तु हम अपने मनको शुद्ध नहीं रखते। तो अपने मनको ठीक रखिये। आपका मन कहाँ रहता है? देखो ना! आपका मन बड़ा श्रद्धालु है। श्रद्धा किये बिना तो कोई रह नहीं सकता। नाईपर भी श्रद्धा करनी पड़ती है कि यह उस्तरा

नहीं मारेगा। डाक्टरपर भी श्रद्धा करनी पड़ती है कि यह हमें अच्छा होनेके लिए दवा देगा। डाक्टर भी कोई-कोई ऐसे निकलते हैं कि वे ऐसी दवा खिलाते हैं कि रोग थोड़े दिन और चले। ऐसा ऑपरेशन कर देते हैं कि जिसकी कोई जरूरत नहीं। क्योंकि लोभसे जब वे अभिभूत हो जाते हैं तो अपने कर्तव्यका ईमानदारीके साथ पालन नहीं करते। लोभी, मोही, कामी, क्रोधी मनुष्य अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन नहीं कर सकते। तो जब आप अन्तःकरणमें गन्दगी रखेंगे तो न तो कर्त्तव्यका ठीक-ठीक पालन कर सकेंगे और न तो आपके सुखमें, प्रसन्नतामें वृद्धि होगी। तो **कश्चिद्यतति सिद्धये**। ऐसा मनुष्य बड़ा दुर्लभ है जो अपने दिलको साफ रखनेके लिए कुछ साधन, भजन करता है।

आपकी श्रद्धा किसपर है? बेईमानपर या ईमानदारपर। जब बेईमानपर श्रद्धा करेंगे तो आपके हृदयमें बेईमानी आयेगी, आप भी बेईमान हो जायेंगे। **यत् श्रद्धः स एव सः**। गीता बोलती है जिसपर जिसकी श्रद्धा है वह वही है। जब आप लोभीपर श्रद्धा करते हैं तो आप स्वयं लोभी हो जाते हैं। कामी-पर श्रद्धा करते हैं, स्वयं कामी हो जाते हैं। क्रोधीपर श्रद्धा करते हैं, स्वयं क्रोधी हो जाते हैं। उसका सहयोग लेंगे। निष्कर्ष यह है कि श्रद्धा मनुष्यके जीवनका निर्माण करती है।

अब देखो अपना हृदय साफ करनेके लिए, शुद्ध करनेके लिए, स्वच्छ करनेके लिए आप कुछ करते हैं कि नहीं? आप प्रातःकाल उठो और परमात्माका स्मरण करो। शरीरको पीछे साफ करना। पहले परमात्माके स्मरणसे हृदय शुद्ध होता है। क्योंकि वह सबके हृदयमें हैं। आप संकल्प करो कि हम कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे किसीको दुःख पहुँचे। हम लोग रोज पहले बोलते थे—

दृतेदृꣳहमा मा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षान्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्ष्ये समीक्षामहे॥
शु.य. ३६.१८

हम मित्रकी दृष्टिसे सबको देखते हैं और सबको देख रहे हैं। सब लोग मित्रकी दृष्टिसे सबको देखें। एक बात! मैं मित्रकी दृष्टिसे देख रहा हूँ और हम लोग मित्रकी दृष्टिसे देखते हैं। सब लोग देखें, मैं देखूँ और हम लोग सब देख रहे हैं। तो मित्रकी दृष्टि—**मेद्यति इति मित्रं**। सबके ऊपर अपने स्नेहकी वर्षा करते हैं। स्नेह देते हैं। किसीके प्रति रूक्षता नहीं बरतते हैं, क्रूरता नहीं बरतते हैं। अपने हृदयमें-से जैसे कुएँमें-से जितना पानी निकालके बाहर करो, उतना नीचेसे आजाता है। वैसे ही अपने हृदयसे जितना स्नेह बिखेगे, उतना स्नेह भीतरसे और आता है। यह स्नेह माने चिकनाई, मक्खन, दूध, दही, तेल, मलाई आदि चिकनी करनेवाली चीजें हैं। चिकनाई माने दो चीजोंको जोड़कर एक कर दें। चूर्णको जो पिण्ड बना दे, उसका नाम स्नेह होता है। **पिण्डीभावहेतुगुणा स्नेहः**। जो चूर-चूरको मिलाकर एक कर दे। जो मिला दे उसका नाम स्नेह है। आप वह स्नेह अपने हृदयमें धारण करते हैं, तब आपका हृदय शुद्ध होता है। जब हृदय शुद्ध होता है तो **कश्चिन्मां**—शुद्ध हृदयवाले भी सब नहीं जानते। कोई-कोई ऐसे होते हैं जो तत्त्वतः भगवान्‌को जानते हैं। तत्त्वतः भगवान्‌को जाननेके लिए क्या विवेक अपने जीवनमें करना चाहिए, अनेकमें एकको दिखा रहे हैं—**भूमिरापोनलो वायुः**।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

●

प्रवचन : ३

अस्व त्वामनुसन्दधामि अपने हृदयको शुद्ध करनेके लिए अनुसन्धान करें। हृदयकी शुद्धि ही अर्थको भी शुद्ध करती है, कामको भी शुद्ध करती है। धर्मको परिपूर्ण बनाती है और मोक्षकी योग्यता देती है। यह अध्यात्मशास्त्र हृदयकी शुद्धिके लिए होता है। यदि आपका उद्देश्य है हृदयको शुद्ध करना, तो अध्यात्मशास्त्रके श्रवणसे, मननसे, निदिध्यासनसे तत्काल लाभ होता है। जैसे आप यज्ञ करें, दान करें, धर्म करें तो उससे एक अपूर्व उत्पन्न होता है और वह इस जन्ममें या अगले जन्ममें, परलोकमें उससे फलका उदय होता है। यह आधिदैविक शास्त्र है धर्मशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र वह है जो अपूर्वको उत्पन्न किये बिना तत्काल अन्तःकरणको शुद्ध करता है। यह दोनोंका अन्तर है। धर्मानुष्ठान अन्त.करणमें एक अपूर्व उत्पन्न कर देता है और उससे इसी जन्ममें आगे चलकर या दूसरे जन्ममें या परलोकमें आपको उसका फल, सुख मिलेगा और यह अध्यात्मशास्त्र इसी समय अन्तःकरणको शुद्ध करके उसमें जो परमानन्दघन परमात्मा है उसके अनुभवकी योग्यता उत्पन्न करता है। इसलिए भक्तिशास्त्र, ज्ञानशास्त्र—अध्यात्मशास्त्र हैं। धर्मशास्त्रकी विद्या दूसरी है।

यदि कोई वेद पढ़े और उसके अनुसार अनुष्ठान न करे तो वेदज्ञान सफल नहीं होता। ब्रह्मज्ञान केवल ज्ञान मात्रसे ही अपने स्वरूपका साक्षात्कार करा देता है। इसीसे इसे परा विद्या बोलते हैं, यह अपरा विद्या नहीं है। वेद कर्मकाण्डात्मक वेद होनेसे

अपरा विद्या है। उसका फल बादमें होता है। उपनिषद् परा विद्या है, इसका फल तत्काल उदय होता है अन्तःकरणमें।

अब सातवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी महिमाका सविशेष वर्णन किया है। क्योंकि माहात्म्य-ज्ञानपूर्वक जो भक्ति होती है वही सच्ची भक्ति होती है। कोई सुन्दरता देखकर कि यह मूर्ति बड़ी सुन्दर है, यह चित्र बड़ा सुन्दर है, श्रृंगार देखकर, स्वच्छता देखकर जो प्रेम होगा, जो भक्ति होगी, वह यदि कहीं देखेंगे कि श्रृङ्गारमें कमी है, स्वच्छतामें कमी है, सुन्दरतामें कमी है तो वह भक्ति, वह प्रेम टूट जायेगा। उदारता, प्रेम—गुण देखकर प्रेम किया जायेगा तो एक दिन देखेंगे वह बड़ा कृपण है। सुन्दरता देखकर यदि प्रेम किया तो मुँहासे निकल आये फिर? तलाक हो जायेगा। सुन्दरता देखकर, मधुरता देखकर, बाहरी चरितका चाकचिक्य देखकर जो प्रेम होगा, उसमें परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है। माहात्म्य-ज्ञानपूर्वक जो प्रेम होता है वह प्रेम स्थायी होता है।

> माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः।
> स्नेहो भक्तिर्हि कथितः तया मुक्तिर्न चान्यथा।

पहले होना चाहिए माहात्म्यका ज्ञान। जिसकी भक्ति हम करते हैं, जिससे प्रेम करते हैं, जिसकी सेवा करते हैं, वह भले सुन्दर रूपमें न आवे, भले श्रृंगार करके न आवे, भले उसके चरित्रमें कोई कठोरता भी मालूम पड़ती हो, परन्तु यदि उसके माहात्म्यका ज्ञान है, महिमाका ज्ञान है, तो भक्ति हट नहीं सकती, प्रेम हट नहीं सकता।

इसीसे जिनके माहात्म्यका ज्ञान है उनके प्रति आकर्षण सर्वदा अधिक होता है। केदारनाथकी मूर्ति क्या सुन्दर है? एकलिंग मूर्ति है? पण्ढरीनाथकी मूर्तिमें क्या सौन्दर्य है? एक काले पत्थरमें

कुछ रेखाएँ खिंची हुई हैं। परन्तु उनके माहात्म्यका जो ज्ञान है वह सदासे लाखोंको आकृष्ट करता आ रहा है। वहाँ न उतनी स्वच्छता है, न उतनी सुन्दरता है, न उतना शृङ्गार है। परन्तु लोगोंकी भक्तिको वह आकृष्ट करता है। इसलिए भगवान्की सुन्दरता, मधुरता भी मनको खींचती है और वह नित्य होती है परन्तु भगवान् नृसिंहके रूपमें आजाय तो क्या वे भगवान् नहीं रहते? क्या भगवान् वाराहके रूपमें आजायें तो भगवान् नहीं रहते? इसलिए महिमाका ज्ञान ही भक्तिको स्थिर बनाता है।

भगवान् अपनी महिमाका वर्णन करते हैं। इस सृष्टिमें दो प्रकारकी प्रकृति है। एक जड़ प्रकृति और दूसरी जीव प्रकृति। दोनोंको कहते हैं कि ये मेरी हैं। दोनोंका मालिक मैं हूँ। यह माहात्म्यका निरूपण है। प्रकृतिसे होते हैं सम्पूर्ण प्राणी और मैं उस प्रकृतिका भी कारण हूँ। तीन विभाग करके यहाँ परमेश्वर-स्वरूपका वर्णन कर रहे हैं। अपरा प्रकृति, परा प्रकृति और परमेश्वरा—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

तीनका वर्णन है। जैसे तेरहवें अध्यायमें क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ और ब्रह्म। जैसे पन्द्रहवें अध्यायमें क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और पुरु-षोत्तम। वैसे सातवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्ण यह वर्णन करते हैं

कि सारी प्रकृति, चाहे जीव प्रकृति हो और चाहे जड़ प्रकृति, यह सब मेरी प्रकृति है। अब यहाँ प्रकृतिवादकी दृष्टिसे भी अद्वैतका वर्णन है। चैतन्य प्रकृतिवादसे भी अद्वैतका वर्णन है और यहाँ परमात्माके स्वरूपके निरूपणसे भी अद्वैतका वर्णन है। हम लोग जहाँ हैं, वहाँसे यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए। जैसे कहीं जाना हो तो जहाँ पहुँचना हो, वहाँसे यात्रा प्रारम्भ नहीं होती जहाँ हम हैं, वहाँसे यात्रा प्रारम्भ होती है। तो हमको ईश्वरकी ओर चलना हैं।

मनुष्य जिस धरतीपर गिरा हुआ होता है, उसीका सहारा लेकर ऊपर उठता है। यहाँ भूमिसे प्रारम्भ हुआ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहङ्कार एक प्रकृति है। परन्तु आठ प्रकारसे वह भिन्न हो गयी। प्रकृति माने प्रथम कृति। प्रथम रचनाका नाम प्रकृति है। प्र माने प्रथम, कृति माने रचना। प्रकृष्ट कृति—उत्तम कृति है। परन्तु कृति है। भगवान्‌ने अपने अन्दर ऐसी रेखाएँ खींच ली हैं जिनसे वे जड़के रूपमें मालूम पड़ते हैं। वही दृश्य है, वही द्रष्टा है।

परमात्माको पहचाननेके लिए एक कल्पित विवेक होता है। यह जड़ है, यह चेतन है और यह ऐसी वस्तु है जिसमें जड़ चेतन-का विभाग नहीं है। जड़ प्रकृतिको बताया—भूमिः-आपो-अनलो वायुः। पहले पृथिवी है, पृथिवी तन्मात्रा। पृथिवीमें और पृथिवीकी तन्मात्रामें अन्तर होता है। जिस तत्त्वसे हमारी नाक बनी है उसको पृथिवी तन्मात्रा बोलते हैं। नाक माने जिसका फोटो लेते हैं वह नहीं। गन्धको ग्रहण करनेकी जो शक्ति है और वह सारे शरीरमें होती है।

बाहरकी वस्तुओंमें गन्ध फेंकनेकी शक्ति होती है वैसे सम्पूर्ण प्रकृतिमें गन्ध ग्रहण करनेकी भी शक्ति होती है। जैसे आगे

चलकर यदि ऐसा वैज्ञानिक आविष्कार हो, जो नासिकाके छिद्रमें जिस शक्तिके रहनेसे ग्रहण होता है उस शक्तिका विकास हाथमें कर लिया जाये या पाँवमें कर लिया जाय तो हम हाथसे, पाँवसे भी गन्ध ग्रहण कर सकेंगे। यह वैज्ञानिक उन्नतिकी सम्भावना है जैसे हम जीभसे स्वाद ले सकते हैं। जीभमें भी कोई शक्ति है जिससे स्वाद मालूम पड़ता है, यदि उस शक्तिका विकास कर लिया जाये तो हम शरीरके किसी भी हिस्सेसे स्वाद ग्रहण कर सकते हैं। उनमें मिश्रण नहीं होता। कहीं भी आँख हो सकती है। कहीं भी त्वचा हो सकती है, कहीं भी कान हो सकता है। ये तो सूक्ष्म शक्तियाँ हैं जिनका विकास किया जाता है।

यह विकास वैज्ञानिक ढंगसे भी हो सकता है और योगाभ्यास-से भी हो सकता है। ईश्वरकी कृपासे भी हो सकता है। तीन विभाग हैं इसके। वैज्ञानिक लोग तत्त्वके शोधनसे कर सकते हैं, आध्यात्मिक लोग मानसिक विकाससे कर सकते हैं और ईश्वरकी कृपासे विना वैज्ञानिक अनुसन्धानके और बिना योगा-भ्यासके इसका प्रकाश हो सकता है। यह ईश्वरकी प्रकृति है, ऐसी इसकी माया है।

यह जो हम पृथिवी देखते हैं—यह पञ्चीकृत पृथिवी है। इसमें ऐसा बोलते हैं कि आठ आना तो पृथिवी है और दो आना जल, दो आना तेज है, दो आना वायु है, दो आना आकाश है। सोलह आनोंकी पृथिवी कैसे बनी? आठ आनेकी पृथिवी और आठ आनेके शेष चार तत्त्व। इसको कहते है पञ्चीकृत। पाँच-पाँचके मिश्रणसे। इसी तरह जल होता है। आधा जल, दो-दो आने पृथिवी, अग्नि, वायु और आकाश। ऐसे ही अग्नि होती है, ऐसे ही वायु होती है और ऐसे ही आकाश होता है यह प्रक्रिया है।

प्रकार भेद और इन्द्रियोंमें जो इनकी शक्ति होती है वह अपञ्चीकृत होती है। आँख केवल देख सकती है, न सूँघ सकती है, न सुन सकती है, न चख सकती है। नाक केवल सूँघ सकती है, न चख सकती है, न देख सकती है। जिह्वा केवल चख सकती है, न सूँघ सकती है, न सुन सकती है। इनमें एक-एक भूतकी तन्मात्राएँ होती हैं।

यहाँ जो **भूमिरापोऽनलोवायु**का वर्णन है वह अपञ्चीकृत पञ्चभूतमें है। वह मिट्टी जिसमें पानी, आग, हवा और आकाशका मिश्रण नहीं है वह जल जिसमें मिट्टी, वायु, जल और आकाशका मिश्रण नहीं है, वह तेज जिसमें मिट्टी, वायु, जल और आकाशका मिश्रण नहीं है—पञ्चीकृत पञ्चभूत हैं। ये पाँच महाभूत और पाँच महाभूतकी तन्मात्राएँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। **मनो बुद्धिः अहंकारः**—मन, बुद्धि और अहंकार ये तीन और हो गये। तो बीस और तीन तेईसके रूपमें जो परिणत हुई है वह चौबीसवीं प्रकृति है। नाम तो यहाँ लिया है आठका, लेकिन है इसमें प्रकृतिके चौबीस तत्त्वोंका निरूपण। यह क्या है? भगवान् कहते हैं—**भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।**

इसका अर्थ यह हुआ कि प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार तत्त्व, अहंकार तत्त्वसे पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतन्मात्राके सात्त्विक अंशसे मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ और फिर उनके पञ्चीकृत रूपसे यह सम्पूर्ण विश्व। यह क्या है—यह भगवान्का ही एक प्रकार है। ईश्वरका ही एक प्रकार है। सम्पूर्ण विश्व-सृष्टिकी प्रकृति भगवान्की ही प्रकृति है। बिना किसी कारणके वे अपने स्वरूपसे इस विश्वके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। पर इस प्रकृतिको धारण करनेवाला कौन है? एक-एक शरीर। हाथ हिलनेसे कर्म नहीं होता। धर्मकी उत्पत्ति नहीं होती। न अधर्मकी उत्पत्ति

होती है। परन्तु जब हिलानेवाला है—जीव जब कर्म करता है तब धर्म-अधर्मकी उत्पत्ति होती है।

हाथ जोड़ लिया। यह जान-बूझकर हाथ जोड़ा, श्रद्धासे जोड़ा, तो हाथ जोड़नेकी क्रियासे धर्मकी उत्पत्ति हुई। और दुर्भावसे घूसा तान लिया तो जीवके लिए अधर्मकी उत्पत्ति हो गयी। परन्तु कर्त्ता होना चाहिए। धर्म और अधर्मकी उत्पत्ति केवल वस्तुमात्रसे नहीं होती, क्रियामात्रसे नहीं होता, उसमें जीवके कर्त्ता होनेसे धर्म, अधर्मकी उत्पत्ति होती है। अब हम लोगोंने कितने तो बुरे काम किये हैं और कितने तो अच्छे काम किये हैं, जान-बूझकर किये हैं। इसलिए उनका निवारण भी जान-बूझकर जब करेंगे तब होगा, अपने आप नहीं होगा। पाप किये हैं तो उनका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। उनके विरुद्ध पुण्यानुष्ठान करना पड़ेगा और जो दुनियाका मालिक है, उससे क्षमा माँगनी पड़ेगी क्योंकि आपने उसके प्रति अपराध किया है। यह कर्तव्यकी बात है और जो अच्छा बुरा कर्म करेगा उसे अच्छा बुरा फल भी भोगना पड़ेगा।

प्रकृति तो भगवान्‌की है पर कर्तव्य जीवका है। यह मिट्टी, आग, हवा, पानी, आकाश, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार सब प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं। प्रकृति ही इनमें बनी है। यह भगवन्मयी प्रकृति है। परन्तु जब हम इसमें कर्तव्याभिमान करके कर्म करने लगते हैं, तब फलकी उत्पत्तिकी योग्यता आजाती है। न मिट्टीमें सुख-दुःख हैं, न पानीमें सुख-दुःख हैं, न आगमें सुख-दुःख हैं, न हवामें सुख-दुःख हैं, न आकाशमें सुख-दुःख हैं, न मनमें सुख-दुःख हैं, न बुद्धिमें सुख-दुःख हैं, न अहंकारमें सुख-दुःख हैं। यह तो भगवान्‌की रचना है।

भगवान्‌के आनन्दमय हाथोंसे जो सृष्टि बनती है, बनानेवाला आनन्द है, उसका संकल्प आनन्द है, उसके हाथ आनन्द हैं।

वह तो आनन्द ही आनन्दकी सृष्टि करता है। परन्तु जब जीव ईश्वरकी वस्तुको मेरी करके मान बैठता है—मैं और मेरा तब उसमें दुःखकी उत्पत्ति होती है। मिट्टी किसीको दु ख नहीं देती, पर यह मेरा खेत है और यह तुम्हारा खेत है, यह जो मेरा और तेरा बन गया, यह मेरा देश, यह मेरा प्राण, यह मेरी जाति, यह मेरा शरीर, यह मेरा परिवार, ये मेरे सम्बन्धी, यह मेरा धन, मेरेमें-से दुःख उत्पन्न होता है।

मृत्युमें-से भी दुःख उत्पन्न नहीं होता। हम देखते थे श्मशानमें बैठकर, सैकड़ों मुर्दे काशीमें मणिकर्णिका घाटपर आते थे, जलते थे और उनका जलना देखते थे। कोई दुःख नहीं था। लेकिन किसी दिन मेरे घरका आगया तो, मेरे रिश्ते-दारका आगया तो? मुर्देने दुःख नहीं दिया, उसके मरनेने दुःख नहीं दिया, उसके जलनेने दुःख नहीं दिया। दुःख तो हुआ जहाँ उसके साथ मेरापना जुड़ा। यह मेरापन तत्काल दुःखमें बदल गया!

ईश्वरकी सृष्टिमें कहीं दुःख नहीं है। न कोई दुःख देनेवाला है। ईश्वर दुःख देनेवाला नहीं है। ईश्वरकी प्रकृति भी दुःख देनेवाली नहीं है। सांख्यवादी ऐसा मानते हैं। चार्वाक भी ऐसा मानते हैं कि चारों भूतोंसे यह बना हुआ शरीर है, इसमें मैं-मेरा ही दुःखदायी है। न्यायवैशेषिक भी मानते हैं कि यह परमाणुओं-से बनी हुई सृष्टि है, यह दुःखदायी नहीं है। यह मैं-मेरा दुःखदायी है। सांख्ययोगी भी ऐसा मानते हैं कि यह प्रकृतिका विस्तार है, यह दुःखदायी नहीं है, इसमें इतना, ऐसा यह मैं, यह मेरा—यह, दुःखदायी हैं। पूर्वमीमांसक भी ऐसा मानते हैं कि अनादिकालसे सृष्टि ऐसी ही चल रही है। इसमें हम जो कर्तृत्वपूर्वक कर्म करते हैं, यह मेरा कर्म, यह मेरा कर्म, यह मेरा कर्म—यही दुःख देता है।

वेदान्ती मानते हैं—नासमझी दुःख देती है, वस्तुतः दुःख कुछ नहीं है।

यह अपनी समझका कसूर है, जो सृष्टिमें हमको दुःख देता है। इसीसे समझ अगर ठीक हो जाय तो दुःख मिट जायेगा। अपनी समझका परिणाम है जिसको बोलते हैं दुःख। समझदारकी पहचान है कि जो समझ रहा है कि जो हो रहा है—प्रकृति है। धरती अपने आपमें चल रही है और अपने आपमें दो तरहकी चाल है। एक तो आकाशमें—दिशाओंमें गति है इसकी और एक अपनेमें परिवर्तन है।

कालमें परिवर्तन है, कल कुछ थी, आज कुछ हो गयी और आकाशमें कभी यहाँ है, कभी वहाँ है और रूपमें कभी माटीके रूपमें पड़ी है, कभी पौधेके रूपमें निकल आयी। वस्तुमें परिवर्तन है, स्थानमें परिवर्तन है। परिवर्तन होता है धरतीमें यह है प्रकृति। जब हम पकड़ते हैं यह पेड़ हमेशा बना रहे, यह जवानी हमेशा बनी रहे, यह मेरी होकर रहे, तब दुःखकी सृष्टि होती है। दुःख जीवका बनाया हुआ है, ईश्वरका नहीं, प्रकृतिका नहीं, परमाणुओंका नहीं।

जीवकी भूल है, अविवेक है। इसको जैन लोग प्रमाद बोलते हैं। दुःख प्रमादसे होता है। बौद्ध लोग अविद्या बोलते हैं। चार्वाक भी बेवकूफी ही बोलता है। योगमें अविद्या बोलते हैं। सांख्यमें अविवेक, वेदान्तमें भी अविद्या बोलते हैं।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

परमेश्वरकी पहचान छूट गयी, इसलिए दुःख हो गया। यदि परमेश्वरकी पहचान बनी रहे तो दुनियामें चाहे आसमान फट जाय, चाहे पहाड़ चूर-चूर हो जाय, चाहे समुद्र बिखर जाय,

धरती रहे कि न रहे—बाबा ! जिसकी दुनिया है वह दुनियाको सँभालेगा, तुम अपने आपको बीचमें क्यों डालते हो ? यह प्रकृति है परमेश्वरकी ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।

यह अपरा प्रकृति है । यह जल है, बूँद-बूँद । संस्कृत भाषामें 'अप' शब्द नित्य बहुवचनान्त है । आपः, अपः, अद्भिः, अद्भ्यः अपाम्, अप्सु—बस इतने ही रूप इसके बनते हैं । एकवचन और द्विवचनमें जलका रूप नहीं बनता । माने यह बूँद-बूँद है । टुकड़े-टुकड़े है । गाँवमें लड़ाई होती है—यह मेरे तालाबका पानी है । यह मेरी पोखरका पानी है । शहरमें लड़ाई होती है—यह मेरे नलका पानी है । यह मेरी बाल्टीका पानी है । पानी किसीको दुःख नहीं देता । मेरापना दुःख देता है । देखो, बिजलीके लिए प्रान्तोंमें लड़ाई होती है । यह ऊर्जा जो शक्ति है वह किस प्रान्तकी है ? यह हमारे देशकी बिजली है, यह तुम्हारे देशकी बिजली है । तो मेरापन दुःख देता है । यह वायु है । यह मेरी साँस है । यह तेरी साँस है । लो हवा तो एक ही है । सबकी नाकमें हवा ही घुसती है और हवा ही निकलती है । बल्कि वह भीतर जाती है तो वहाँसे दुर्गन्ध लेकर बाहर निकलती है, बाहर शुद्ध हवामें मिलनेके बाद वह भी शुद्ध हो जाती है । प्रकृतिमें क्लेश नहीं है, परन्तु आप प्रकृतिमें मेरी मत देखो—जिसकी यह प्रकृति है उसको मेरा देखो ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

जो सुकृती पुरुष हैं वे भगवान्‌को देखते हैं और भगवान्‌की भक्ति करते हैं ।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

जो दुष्कृती हैं, पापी हैं, मूढ़ हैं, नराधम हैं (गाली देते हैं—नराधम कह दिया) दुष्कर्म करते हैं, सोचते हैं हम दुष्कर्म करके सुखी होंगे—मूढ़तामें फँसे हुए हैं, नराधम हैं। वे भगवान्‌की शरण ग्रहण नहीं करते, भगवान्‌की भक्ति नहीं करते। जो सुकृती पुरुष होता है वह वस्तुको नहीं देखता, वस्तुको मैं-मेरी नहीं करता, ईश्वरको मेरा मानता है और ईश्वरको जब समझ जाता है तब तो मैंको अभिन्न मानता है। भक्तिसे संसारका मेरापन छूटता है और तत्त्वज्ञानसे देहमें, परिच्छिन्नतामें जो मैंपना है वह छूटता है। भक्ति ममताको छुड़ाती है और ज्ञान मैंको छुड़ाता है। यह दोनोंका विभाग है। परन्तु यह दोनों छूटेगा कब ? जब पहले सत्कर्म करेंगे। बिना सत्कर्मके—अपने कर्मके द्वारा आप भगवान्‌की पूजा करते हैं कि नहीं।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

जो वैज्ञानिक लोग प्रकृतिका स्वरूप मानते हैं और जो सांख्ययोगी—प्रकृतिका स्वरूप मानते हैं उनकी अपेक्षा यहाँ प्रकृतिका स्वरूप विलक्षण है क्योंकि दोनोंमें—

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।

भगवान् कहते हैं—यह मेरी प्रकृति है—अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। तो यह भगवान्‌की प्रकृति है। यह न सांख्य है, न योग है। यह भगवान्‌की प्रकृति है। प्रकृति हैं माने स्वभाव है। अर्थात् भगवान्‌का स्वभाव ही ऐसा है कि वे जगत्‌के रूपमें, जीवके रूपमें खो जायँ या जगत्‌के रूपमें, जीवके रूपमें मालूम पड़ें। यह ईश्वरका स्वरूप है। प्रकृतिको हम लोग धारण करके बैठे हैं। देहको धारण करके बैठे हैं।

यथेदं धार्यते जगत्। यह शरीर मेरा है, मैं हूँ। यह राष्ट्र मेरा है, मैं हूँ। राष्ट्रसे भी तादात्म्य होता है। स्वामी रामतीर्थ बोलते थे 'मैं पृथिवी हूँ, मैं समुद्र हूँ, मैं तेजस्तत्त्व हूँ, मैं हिमालय हूँ, यह सम्पूर्ण भारतवर्ष मैं हूँ। हिमालय मेरा सिर है, कन्याकुमारी मेरा पाँव है, पश्चिम समुद्र मेरा हाथ है, पूर्व समुद्र मेरा हाथ है, मैं भारतवर्ष हूँ।' यह उनकी अहंता समग्र भारतवर्षमें हो गयी, समग्र विश्व-ब्रह्माण्डमें हो गयी। सम्पूर्ण विश्व-ब्राह्माण्डोंके अधिष्ठानसे हो गयी।

यह जो जीव है, यह सम्पूर्ण देहको भी धारण करता है—मेरा हाथ, यह मेरा पाँव, यह मेरा दिल, यह मेरा दिमाग और सम्पूर्ण विश्वको भी धारण करता है। जितनी उदात्त दृष्टि होगी, जितनी उदीर्ण दृष्टि होगी, जितनी विस्तीर्ण दृष्टि होगी उतना ही अपने आपको समझोगे।

इन्हीं दोनों प्रकृतियोंसे यह विश्व बना है। मिट्टीमें भी वही है। पेड़में भी वही है। जो देहमें है वही ब्रह्माण्डमें है। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। परन्तु यह कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड बनते और बिगड़ते रहते हैं और इनमें मैं होता और टूटता रहता है। जैसे एक शरीरमें मैं होता है। पहले अपना मैं कहाँ था? ब्राह्मणपनेमें था। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं गृहस्थ हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं वानप्रस्थ हूँ, मैं संन्यासी हूँ। नहीं संन्यासी नहीं हूँ—मैं तो जीवात्मा हूँ। जीवात्मा नहीं हूँ—मै तो साक्षात् परमेश्वरका अंश हूँ। परमेश्वरका अंश नहीं हूँ—अंश और अंशीका जो भेद है वह परिच्छिन्नताकी दृष्टिसे है। मैं तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्म हूँ।

तो ये जितनी सृष्टियाँ हैं, प्रकृतिमें जितने भेद-विभेद हैं, इनका मूल कहाँ है? अब देखो माहात्म्यज्ञान—

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।

संसारमें जीव-प्रकृति और जड़-प्रकृति इन दोनोंके मेलसे ये सब-के-सब बने हैं। जो हुआ सो भी इन दोनोंसे, जो है सो भी इन दोनोंसे जो होगा सो भी इन दोनोंसे, यह निश्चय करो।

अब उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपना स्वरूप बताते हैं। हाथमें ज्ञान है, इसके बिना भक्ति नहीं हो सकती। माहात्म्यज्ञानके विना सच्ची भक्ति नहीं आ सकती। यदि आप पाँच वर्षसे सुन्दरता देखकर भगवान्‌से प्रेम करते हैं तो पाँच लाख वर्ष पहलेके होनेवाले ऐसे रूपसे क्यों प्रेम करते हैं? आजकी सुन्दरतासे ही क्यों नहीं करते? वह तो आँखोसे ओझल है। परोक्ष सौन्दर्यसे आप प्रेम करते हैं? नहीं भाई, कृष्ण नित्य हैं—आज भी हैं। राम नित्य हैं—आज भी हैं। यह नित्यता क्या है? यह माहात्म्यका ज्ञान है। लोग मर जाते हैं परन्तु राम, कृष्ण नहीं मरते। यह माहात्म्यका ज्ञान हो गया। मनुष्य एक स्थानपर रहता है। राम-कृष्ण सब जगह रहते हैं। सबके हृदयमें रहते हैं—यह माहात्म्यका ज्ञान हुआ। जो भक्ति करता है उसके ऊपर कृपा करके वे उसे मिलते हैं, प्रकट होते हैं। बड़े दयालु हैं। यह माहात्म्यका ज्ञान है। वे हमारे दिलकी जानते हैं—सर्वज्ञ हैं। वे सर्वशक्ति हैं—यह माहात्म्यका ज्ञान है। इतने दयालु हैं कि हमारे सामने प्रकट हुए बिना रह नहीं सकते। उनकी सर्वज्ञताका ज्ञान, उनकी सर्वशक्तिका ज्ञान, उनकी दयालुताका ज्ञान—यह माहात्म्यका ज्ञान है। बिना माहात्म्यज्ञानके—

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ ६॥

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ७॥

आओ परमेश्वरका दर्शन करें—

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।

जगत् माने जो बदलता है। आप एक सरीखा नहीं रख सकते जगत्को। उन सब लोगोंको रोना पड़ता है जो दुनियाको एक सरीखा बनाये रखनेकी कोशिश करते हैं। जो कहेगा अब तो हम हटेंगे ही नहीं, हम ही रहेंगे उसको तकलीफ उठानी पड़ेगी। यह कुर्सी हमारी—अब तो हम कुर्सीपर-से कभी नहीं हटेंगे। ऐसा चाहे पिछला बोले, चाहे वर्तमान बोले—चाहे अगला बोले-कुर्सी तो हटेगी, छोड़नी पड़ेगी। अब तो हम हटेंगे ही नहीं ऐसे सटे, ऐसे सटे कि अब तो हम हटेंगे ही नहीं कहते हैं। जगत् माने—

गच्छति इति जगत्।

गम् धातु होनेसे इसका ज्ञान भी बदलता है। इसका स्वरूप भी बदलता है। इसमें गति भी है और इसमें वृत्तिका परिवर्तन भी है और इसका मिलना और बिछुड़ना भी है। मिलना, बिछुड़ना, आना, जाना और इसके ज्ञानमें परिवर्तन। नया-नया साइन्स, नया-नया रूप, नया-नया आविष्कार होगा। नया-नया रूप बदलेगा, नयी-नयी चीज आयेगी, नया-नया मिलेगा, नया-नया बिछुड़ेगा। इसका नाम है जगत्। यह जगत् बदलता है। इसमें न बदलनेवाला भी कुछ है क्या ?

अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्वस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

आप अपने मनको बदलता हुआ देखते हैं कि नहीं ? जो मनको बदलता हुआ देखता है वह ईश्वरका अंश है और जो सारी सृष्टिको बदलता हुआ देखता है, जिसमें रहकर जिसकी आँखोंके सामने यह सारी सृष्टि बदल रही है—इसका नाम है परमेश्वर। यदि उसके साथ अपना मन जोड़ेंगे, उसकी भक्ति करेंगे,

तो दुनियाके बदलनेका तुम्हारे ऊपर कोई असर नहीं पड़ेगा। सीधी बात है—बदलती हुई चीजमें अपना मन रखेंगे तो वह चीज बदलेगी और आपका मन खट्टा हो जायेगा।

अहं कृत्स्नस्य जगतः। कृत्स्न शब्दका अर्थ है सम्पूर्ण। यह सारी जो दुनिया है यह बदल रही है और इसकी उत्पत्ति भी।

दो बात कही जाती है—जिसमें यह दुनिया पैदा हो रही है और जिसमें यह दुनिया समा जाती है। जिसमें यह पैदा होती है यह तो हुआ कारण—प्रभवः। वह निमित्त कारण भी हो सकता है। परन्तु 'प्रलीयते अस्मिन्' जो है वह केवल उपादान कारण हो सकता है—घड़ेका बनना और घड़ेका फूटकर लीन होना। बनानेके लिए कुम्हारकी जरूरत पड़ती है परन्तु घड़ा फूटकर मिट्टीमें लीन होता है। इस सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है परमेश्वर। बनानेवाला भी वही और जिसमें यह दुनिया समा जाती है वह मसाला भी वही। माने वही, वही है। बनानेवाला भी वही है **प्रभवः प्रलयस्तथा**। बननेवाला भी वही है।

अब एक दृष्टि देखें। प्रकृतिके जो दोनों विभाग हैं—जीव-विभाग और जड़-विभाग—इन दोनोंके ही प्रभव और प्रलय परमात्मा हैं। उन्हींमें सृष्टि पैदा होती है और उन्हींमें रहती, होती है। अब एक दृष्टि देते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

धनञ्जयका अर्थ है तुम अग्निरूप हो। धनञ्जय अग्निका एक नाम है। अग्निरूप हो, परम तेजस्वी हो। महाबाहो माने बड़े शक्तिशाली हो। ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ तुम्हारे हाथ न पहुँच सकते हों और ऐसी कोई चीज नहीं है जिससे मुक्त होकर तुम रह नहीं सकते हो। इसका अर्थ हुआ, अर्जुन, हम

तुम एक। महाबाहो माने शक्तिमें एकरूपता है और भस्मसात् करनेमें एकरूपता है। धनञ्जयका अर्थ होता है—साधनजयी। जिसने सम्पूर्ण साधनोंपर काबू पा लिया है। साधनका एक भाग है धन।

धनञ्जय माने साधनञ्जय। तुमने सम्पूर्ण साधनोंपर विजय प्राप्त कर ली है क्योंकि तुमने अपने जीवन-रथका सारथि मुझे बना दिया। तुम मुझे देख रहे हो। मेरी आँखसे तुम्हारी आँख मिल गयी हैं। मेरी मतिसे तुम्हारी मति मिल गयी है। जब तक ईश्वरसे मतभेद है तबतक आदमी दुःखी है। ईश्वरकी दृष्टिसे देखें—दुनियाको ईश्वर कैसा दीखता है? दुनियाको ईश्वर कैसा दिखा रहा है? जैसा दिखा रहा है वैसा देखिये और जिस दृष्टिसे देखकर वह मजा ले रहा है, उसमें मजा लीजिये। जैसा हो रहा है वैसा होने दीजिये। जैसा दीख रहा है वैसा दीखने दीजिये। देखिये परमानन्द, अपने हृदयमें शान्ति ही शान्ति है।

'मत्तः परतरं अन्यद् किञ्चित् नास्ति'

मुझसे अलग, मुझसे परे, कुछ नहीं है। अब यह दृष्टि है। इसका नाम दर्शन है। परमात्माकी ओरसे देखो। घड़ेकी ओरसे देखो। घड़ा अलग है, सकोरा अलग है। करोड़-करोड़ घड़े हैं। करोड़-करोड़ सकोरे हैं। कोई बड़ा है, कोई छोटा है। कोई काला है, कोई लाल है। किसीमें शराब भरी है और किसीमें दूध भरा है। यह घड़ेकी विशेषता है। परन्तु जरा माटीकी ओरसे देखो—बड़ा हो कि छोटा, काला हो कि लाल, गोल हो कि लम्बा—सब माटी है। तो जिस माटीसे यह दुनिया बनी है उस मृत्तिकाको पहचानो। उस मसालेको पहचानो तो देखोगे कि घड़ेमें किसीमें शराब है और किसीमें पञ्चामृत है, गङ्गाजल है, दूध है, दही है। परन्तु घड़ेकी माटी एक है। भगवान्के

सिवाय दूसरी कोई चीज नहीं है यह माहात्म्य है। अन्यद् किञ्चित नास्ति दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

मुझसे परे कोई नहीं है मुझसे बड़ा कोई नहीं है, और मुझसे दूसरा नहीं है। माने मेरा बाप भी नहीं है और मेरा भाई भी नहीं है। मेरा दुश्मन भी नहीं है और किञ्चित् माने एक अणु, परमाणु कण भी नहीं है। मुझसे कोई बड़ा नहीं है और मेरा कोई प्रतियोगी नहीं है। मेरे बराबरका नहीं है। बड़ा भी नहीं, बराबर भी नहीं, छोटा भी नहीं। इसका अर्थ है मैं ही हूँ।

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

इसमें भगवान्की पूजाकी एक प्रक्रिया है देखो वह क्या है ? यह बात संसारके किसी मजहबमें नहीं है। यह वैदिक धर्मकी विशेषता है। यह मजहबी बात नहीं है। आप पार्थिव लिङ्ग बनाकर पूजा करते हैं। हमको एक पण्डित मिले, उन्होंने बताया कि हमने एक करोड़ पार्थिव लिङ्ग बनाकर उनकी पूजा की। मिट्टीकी भगवान्के रूपमें पूजा। बोले हमने गंगाजलमें दूध चढ़ाया है, समुद्रमें अर्घ्यं दिया है, जलमें भगवान्की पूजा की है। हमने अग्निमें भगवान्की पूजा की है। सूर्यमें, चन्द्रमामें, भगवान्की पूजा की है। हमने प्राणोपासना की है। अपनी साँसमें, वायुमें, भगवान्की आराधना की है। हमने आकाशमें भगवान्की आराधना की है। अपने मनमें, बुद्धिमें और अहंमें भी भगवान्की आराधना की है। यह सब क्या है ?

दुनियाके किसी भी मजहबमें यह बात नहीं है कि मिट्टी भी भगवान्, पत्थर शालिग्राम भगवान्, नर्मदालिङ्ग भगवान्, जयपुरकी गढ़ी हुई मूर्ति भगवान्। मार्बल भगवान्, लालपत्थर भगवान्। पार्थिव लिङ्ग जो मिट्टीके बनाते हैं—भगवान्। किसी मजहबमें ईश्वरको सर्वात्मक नहीं मानते हैं। ईश्वर सर्वरूप है—वही सब

है, यह बात किसी मजहबमें मानी नहीं जाती है। जो ईश्वर नहीं मानते हैं, उनकी तो कथा छोड़ दो। चार्वाक मतमें ईश्वरकी कोई चर्चा नहीं है। वह तो खाओ, पीओ, मौज उड़ाओका सिद्धान्त है।

व्यक्तिपूजा है जैन मतमें। जीव शुद्ध होकर तीर्थङ्कर, वीत-राग हो जाता है और अलग-अलग उनकी उज्वलता बनी रहती है। वहाँ भी सब ईश्वर है यह बात नहीं। जो पवित्र होता है, वह ईश्वर-समान हो जाता है। उसकी इकाई बनी रहती है। बुद्धमें आत्माका उच्छेद हो जाता है। ईश्वरकी आराधना नहीं है।

यह तो वैदिक धर्म ही ऐसा है, जिसमें सबके रूपमें परमेश्वर प्रकट हैं। इसीसे इस धर्मके बिना, इस विचारके बिना, इस दर्शनके बिना राग-द्वेषकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती। जीवन्मुक्तिका सुख नहीं हो सकता। यह विचार है, यह ज्ञान है।

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चदस्ति धनञ्जय।

जिनका ईश्वर केवल निराकार है, तो जो कुछ हम देख रहे हैं वह उसके लिए ईश्वर नहीं है। तो मूर्ति-भञ्जक हो गये, जो मन्दिर तोड़ते हैं वे मूर्त्ति तोड़ते हैं। हमारे एक मित्र रूस गये थे। उन्होंने बताया कि लेनिनकी समाधिपर वे गये, तो एक मीलकी क्यू लगी थी और शान्त—चुपचाप। हाँ जी, ये वे हैं जो ईश्वर नहीं मानते। पर कब्रकी पूजा करते हैं। ईसाई लोग ईश्वरका आकार नहीं मानते. परन्तु कब्रपर देखो तो दीया भी जल रहा है, फूल माला भी चढ़ रही है। जो ईश्वरकी पूजा नहीं करेगा, उसे कब्रकी पूजा करनी पड़ेगी! मकबरेकी पूजा करनी पड़ेगी। हम मकबरेको बुरा नहीं मानते। वह भी ईश्वररूप है लेकिन वे ईश्वरकी मूर्ति नहीं मानते और भूत-प्रेत जिंदकी पूजा

करते हैं। अपनी बुद्धिमें ईश्वर हो इसकी आवश्यकता है। अग्नि, मिट्टी, जल, वायु आकाशमें ईश्वरकी पूजा है। क्योंकि ये सब ईश्वरके रूप हैं, ये ही ईश्वरकी मूर्ति हैं। फिर सब अलग-अलग शक्ल क्यों हैं ?

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

यह दुनियाकी सृष्टि वस्त्रके समान है और सूतके समान है परमात्मा। जैसे सूतके विन्याससे ईश्वरमें बेल-बूटे बनाये हैं—यह आदमी क्या हैं ? ईश्वरमें बेल-बूटा ! यह स्त्री क्या है ? ईश्वरमें बेल-बूटा। तत्त्वतः ईश्वर है। यह मिट्टी क्या है ? ये पेड़-पौधे क्या हैं ? यह पानी क्या है ? **सूत्रे मणिगणा इव** जैसे तिब्बती लोगोंकी माला होती है। जैसे सिक्खोंकी माला होती है। सूतमें गाँठ लगा ली—एक, दो, तीन, चार—कितनी गाँठे हैं ? परन्तु वे सब गाँठें सूत हैं। जैसे सोनेकी माला होती है, सोनेकी जञ्जीर होती है—मिट्टीकी गोली होती है। गोलियाँ अलग-अलग हैं किन्तु मिट्टी एक है। इसी प्रकार यह सृष्टि कैसी है ? जैसे सूतमें गाँठ लगी हो, जैसे सोनेमें मनके बना दिये हों। ऐसे यह सारी सृष्टि है। मन ही अच्छा होता है मन ही बुरा होता है। मन ही मेरा होता है। मन ही तेरा होता है। जब ईश्वरकी भक्ति आती है तो सब ईश्वर रूपसे अनुभवमें आता है ! अब आगे बतायेंगे कि कहाँ कैसे ईश्वर स्थित है ?

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

●

प्रवचन : ४

भगवद्गीते भवद्वेषिणीम्। समुद्रमें जैसे तरंग हो, फेन हो, वुदवुदा हो या उसका कोई भी अन्य रूप क्यों न हो, वह समुद्रके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, उसी प्रकार परमात्माके स्वरूपमें चाहे वह प्रकृति हो, ब्रह्माण्ड हो;

धरती हो अथवा पिण्ड हो, वह परमात्माके स्वरूपसे अलग नहीं होता। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय** (गीता—७.७) और इसी बातका ज्ञान अभयकी प्रतिष्ठा है।

जो इस अभयकी प्रतिष्ठाको जान लेता है, वह निर्भय हो जाता है। जैसे समुद्रमें मगरमच्छ रहते हैं, मगर रहते हैं, बड़े-बड़े काटने-पीटनेवाले जीव-जन्तु होते हैं, परन्तु समुद्रको उनसे डर नहीं लगता कि ये हमको काट लेंगे। इसी प्रकार उन जानवरोंको भी डर नहीं लगता कि समुद्रमें हम डूब जायेंगे। समुद्र भी निर्भय है और समुद्रमें रहनेवाले वे हिंसक प्राणी भी निर्भय हैं।

इसी प्रकार परमात्माका जो यह स्वरूप है इसमें प्रकृति और कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, हिरण्यगर्भ, महाविष्णु, महाशिव, एक-एक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश अलग-अलग और ये पिण्ड, शरीर तथा इनमें जीव अलग-अलग हैं, परन्तु हैं ये सब परमात्माका विलास। **एकं सद् बहुधा कल्पयन्ति** श्रुति कहती है, एक परमात्मा परिपूर्ण है; उसके बारेमें बहुत्वकी कल्पना होती है—**बहुधा कल्पयन्ति**। **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति** सत्य एक है : विद्वान् लोग उसे अनेक रीतियोंसे वर्णित करते हैं। **एकं वै सद् विबभूव विश्वम्**—एक ही सत्य है वह सम्पूर्ण विश्वके रूपमें प्रकट हो रहा है। वह एक प्रधानतः आत्मा है।

देखिये न, आत्मासे बुद्धि है, आत्मासे मन है, आत्मासे अन्तः-करण है, आत्मासे इन्द्रियाँ हैं, आत्मासे शरीर है और आत्मासे ही यह सम्पूर्ण विश्व मालूम पड़ रहा है। इसमें जीव है कि ईश्वर है, कि मिट्टी है कि पानी है, यह सब आत्मदृष्टिसे ही

ज्ञात होता है। आत्माके सिवाय और कुछ नहीं और यह सब भगवान्‌से बना है, भगवान्‌में है, भगवान्‌का ही रूप है तथा भगवान्‌के सिवा और कुछ नहीं—यह भागवत दृष्टि है। स्पन्द दृष्टि है कि आत्मासे सब है और आत्मा ही सब है। सब कुछ आत्माके स्पन्दनसे ही माननेको स्पन्द दृष्टि बोलते हैं; आत्मा हिल गया और सृष्टि दिखने लग गयी।

यह कोई दूसरी चीज नहीं है; भगवान्‌की चेष्टा—भगवान्‌का संकल्प ही विश्वसृष्टिके रूपमें आया। असलमें एक ही चीज है, उसीका नाम है आत्मा और उसीका नाम है भगवान्। चाहे आत्मसृष्टि बोलो चाहे भागवत सृष्टि बोलो। जब दोनोंको एकमें मिला देते हैं तो उसको ब्रह्म बोलते हैं। ब्रह्म रूपमें है यह सृष्टि, और यह चाहे किसी भी रूपमें दिखे, मुख्य बात अभयकी प्रतिष्ठा का ज्ञान है, इसीलिए कहा है—**अभयप्रतिष्ठां विन्दति स एव विद्**। प्रलयमें भी अभय है, सृष्टिमें भी अभय है। भेदकी प्रतीति हो तब भी अभय है। हानिमें भी अभय है, लाभमें भी अभय है। लोक व्यवहारमें परमेश्वरको कैसे देखा जाय इसकी एक युक्ति बताते हैं—

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥

गीता–७.८

यही उसकी प्रक्रिया है। परमात्माको देखनेका प्रकार यह है—जैसे जल क्या है? जल वह नहीं है जो दो गैसोंके मिलनेसे द्रव रूपमें पैदा होता है। वह तो मशीनी अथवा यान्त्रिक जल है। असलमें जल क्या है? जीभसे हमें जो रस-ग्रहण होता है वह विलक्षण है। आँखसे हम रूप देखते हैं, त्वचासे स्पर्श करते हैं, नाकसे गन्ध सूँघते हैं, कानसे शब्द सुनते हैं और जीभसे रस

लेते हैं, रसनाग्राह्य जो गुण है उसका नाम होता है रस और उस रसात्मक रस-तन्मात्रासे जो बनता है, उसको कहते हैं जल।

इसीलिए कहा है—**रसोऽहमप्सु कौन्तेय**। परमात्मा रस है। वह रसात्मक जलमें ओत-प्रोत है। ओत-प्रोतका अर्थ होता है उसी प्रकार मिला हुआ जैसे कपड़ेमें सूत और सूतमें ताना-बाना। जैसे कपड़ेमें ताना भी सूत हैं और बाना भी सूत है। आड़ा भी सूत है और खड़ा भी सूत ही है। उनके विन्याससे तरह-तरहकी डिजाइनें बन जाती हैं।

इसी प्रकार यह जो विश्वसृष्टि है इसमें सूत्रके रूपमें परमात्मा है, रेशेके रूपमें परमात्मा है, रुईके रूपमें परमात्मा है, बिनौलेके रूपमें परमात्मा है। जब हम नाम रूपका अलगाव देखते हैं तो परमात्मा छिप जाता है और जब नाम-रूपोंमें छिपी हुई एकता देखते हैं तो परमात्मा प्रकट हो जाता है। उसमें जीवन और मरणका कोई भेद नहीं है—दूर और निकटका कोई भेद नहीं है—**अभयप्रतिष्ठां विन्दति**। जीवनमें निर्भयता प्राप्त करनेके लिए सबमें परमात्माको देखना आवश्यक है और वह है-जैसा है वैसा ही सब जगह परमात्माको देखो। कहीं भय नहीं है जीवनमें।

अब रही मृत्युकी बात तो मृत्युमें क्या कम हो जाता है? शरीरमें जो माटी है वह तो राख होकर माटीमें मिल जाती है; जो पानी है वह उड़कर पानीमें मिल जाता है, जो तेज है वह तेजमें मिल जाता है, जो सांस है वह वायुमें मिल जाती है और जो अवकाश है वह आकाशमें मिल जाता है। एक रत्ती भी कोई चीज कम नहीं होती। सब चीजें अपने उपादानोंमें मिल जाती हैं।

तो मृत्यु क्या हुई? केवल आकृति टूट गयी—केवल घड़ा फूट गया; माटी तो ज्यों-की-त्यों रही। जो अपनेको घड़ा मानेगा

उसको फूटनेका डर होगा और जो अपनेको माटी मान लेगा उसे घड़ा फूटनेका कोई डर नहीं—चाहे घड़ा टूटे या न टूटे, चाहे रहे या न रहे। तो इस तत्त्वज्ञानका अर्थ होता है—**अनारोपिताकार।** आकारका आरोप छोड़कर—आकार मढ़ा गया है, आकार गढ़ा गया है, वस्तुमें आकार नहीं है।

जितना जल है, उसमें जिह्वासे आस्वाद्य रस है, रसके रूपमें परमात्मा है। यह मत देखो कि पानी लाल है कि पीला है या काला है, वह बोतलमें है कि गिलासमें है, नदीमें है कि समुद्रमें है। उसमें रसनासे, जिह्वासे, ग्राह्य जो रस है उस रसके रूपमें परमात्मा है। वह थोड़ा है कि ज्यादा है, वह बूँद है कि समुद्र है। बूँदमें भी समुद्र रहता है—

> **बिंदुमें सिंधु समान, यह सुनि अचरज मत करो।**
> **हेरनहार हिरान, रहिमन आपहि आपमें॥**

तात्पर्य, जलमें रस है।

इसी प्रकार चन्द्रमा है, सूर्य है, ग्रह और नक्षत्र हैं। आपकी आँखोंमें भी एक चमक है—इसका नाम है प्रभा। आकृतिको मत देखो और उसके जो नाम रखे गये हैं उनको मत देखो, उस चमकको देखो और आपको परमात्माका दर्शन होगा।

वेदमें कहा है—दुनियामें जितनी वाणी है वह ॐकारसे आच्छन्न है। अ उ म्—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति; ब्रह्मा, विष्णु, महेश; स्थूल, सूक्ष्म, कारण; ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद। जितनी भी त्रयी हैं सब ॐमें प्रणवमें हैं, इसीलिए **प्रणवः सर्ववेदेषु** बोलते हैं। पहले ॐ फिर गायत्री है। गायत्रीसे सारे वेद हैं। वेदमाता गायत्री है। सारे वेद गायत्रीमें-से निकले हैं; गायत्री ॐकारमें-से निकली है; ॐकार अकार, उकार और मकार ये अर्धमात्रामें-से निकले हैं तथा अर्धमात्रा तुरीयमें कल्पित है। हम

इधरसे देखते हैं तो मालूम होता है कि ये सब उसमें हैं और उधरसे देखते हैं तो कुछ नहीं—वही है। सब आत्मा ही है।

शब्दः खे पौरुषं नृषु।

आकाशमें शब्द है। आकाश ही वायु होता है और वायु आकाश हो जाता है। स्थितिका नाम आकाश है, गतिका नाम वायु है।

एक महात्माने बताया कि तुम्हारे शरीरमें मैल जमी है, जानते हो यह मैल कैसे आयी? पहले पसीना हुआ था। पसीना कैसे हुआ था? गरमी हुई थी। गरमी कैसे पैदा हुई थी? तो दौड़कर चले थे। दौड़नेके पहले क्या था तो शान्त बैठे थे। देखो, जो मैल है वह मिट्टी है, पसीना है वह पानी है, जो गरमी लगी वह तेज है और जो दौड़ते थे वह वायु है। उसके पहले जो शान्त बैठे थे वह आकाश है।

इसी तरहसे इस सृष्टिका क्रम है। जितने भी शब्द हैं वे गतिसे जुड़े हुए हैं। जहाँ गति होती है वहाँ ध्वनि भी होती है, यह नियम है। जहाँ कुछ हलचल होगी वहाँ शब्द जरूर होगा, चाहे कानसे सुनाई पड़े या न पड़े। जो शब्द हम बोल रहे हैं यदि इससे ढाई या तीन लाख गुना अधिक ध्वनि हो जाय तो वह कानसे सुनाई नहीं पड़ेगी यों ही यदि ध्वनि ढाई लाख अंश कम हो जाय तो भी वह नहीं सुनाई पड़ेगी। यह तो एक मध्यकालमें ध्वनि सुनाई पड़ती है। आकाशमें ही इसका उदय है और आकाशमें ही विलय है। जहाँ वायुकी उत्पत्ति है वहाँ ध्वनिकी उत्पत्ति है। शब्द तन्मात्रामें आकाश ओतप्रोत है। शब्द हुआ, हिला और अवकाश बन गया। इसके सम्बन्धमें भी दर्शनोंमें मतभेद है।

कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत् स्पन्देन सव्यापकम् ।
स्पन्दश्चापि जगत्तु विदितः शब्दान्वयी सर्वदा ॥

जहाँ कोई काम होता है वहाँ हिलना जरूर होता है। हिले विना कार्य नहीं होता। जहाँ हिलना होता है वहाँ शब्द जरूर होता है। आकाश हिलता है तो वायु बनती है। आकाशका हिलना—यह शब्द आकाशका गुण है। हृदयाकाशमें एक शब्द होता है इसे बोलते हैं—अनाहत। आहत शब्द क्या होता है? जब हम कण्ठमें, तालुमें मनसे, प्राणसे, वायुसे एक तरहकी चोट करते हैं तब एक ध्वनि पैदा होती है।

आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनश्चित्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमादत्ते स च प्रेरति मारुतम् ॥
मारुतस्त्वरसि भ्राम्यन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।

स्वरकी उत्पत्ति कैसे होती है? आत्माका वुद्धिसे संयोग होता है, वुद्धि विषयको देखती है, फिर बोलनेकी इच्छा होती है। इस इच्छासे वायु प्रेरित होती है और वह वायु जब हृदयमें घूमती है तब स्वरकी उत्पत्ति होती है। कण्ठ, तालु आदिके आघातसे शब्दका उच्चारण होता है। 'क'—कण्ठपर जोर पड़ता है। 'त'—दाँतपर जोर पड़ता है। ऋटु रषाणां मूर्धा—मूर्धापर जोर पड़ता है। अक्षरोंके उच्चारणके स्थान बने हुए हैं। उन-उन स्थानोंमें जब हम प्राण वायुके द्वारा जोर लगाते हैं तो उन-उन अक्षरोंका—शब्दोंका उच्चारण होता है। सब जगह शब्द होता है—वह व्यापक है। यह शब्द परमात्मा है।

प्राणीमें पौरुषका निवास है। आप चींटीको देखते हैं, जानते हैं—उसका एक उदाहरण लीजिये। उसको पता लग जाय कि कहीं गुड़ है तो वह छेद करके वहाँ पहुँच जाती है। एक बार कमरेमें मेजके नीचे पाँवदानके पास पानी रख दिया और मेजपर

मिठाई। चींटियाँ कमरेकी छतपर चढ़ गयीं। बल्बका तार जहाँसे लटक रहा था उसपर उन्होंने अपनी लाइन लगा दी। वहाँसे सीधे मिठाईमें टपकने लगीं।

एक जगह मैंने देखा—चितपूरणीमें चटाई बिछाकर पड़ा था। सामने एक कीड़ा मर गया था। चींटियोंने उसे घसीटना शुरू किया। सैकड़ों लग गयीं। कुछकी बिल ऊपर थी दीवालमें। कुछ चाहती थीं उसे नीचे ले जाना, कुछ ऊपरवाले अपने घरमें। यह रस्साकशी बहुत देरतक चली। ऊपरवाली जबर्दस्त निकलीं—खींचकर ले गयीं। किन्तु उनके बिलका मुँह छोटा था, कीड़ा बड़ा था—अब वह उसमें कैसे घुसे? चींटियोंका झुण्ड दो भागमें बँट गया। एक दलने उसे पकड़ रखा और दूसरेने धीरे-धीरे उसका टुकड़ा करना शुरू किया। इस प्रकार उस बिलमें वे ले गयीं।

यह पौरुष चींटीमें कहाँसे आया? यह बुद्धि चींटीको किसने दी? किसी महात्मासे पूछो तो वह कहेगा—यह 'वही है।' **पौरुषं नृषु**। सबके भीतर वही है। वही बौद्ध पुरुषार्थ है। वही मानस पुरुषार्थ है। वही शारीरक पुरुषार्थ है। यह जो सोचते हैं, यह काम हमने किया तो यदि उसकी सत्ता न हो, उसका ज्ञान न हो, उसकी प्रेरणा न हो तो मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। **पौरुषं नृषु**।

पुण्योगन्धः पृथिव्यां च—पृथिवीमें एक संसर्गज गन्ध होती है—किसी चीजके मिश्रणसे। मनुष्यके पेटमें जाकर सभी चीजें गन्दी हो जाती हैं। गन्दगीका खजाना पृथिवी नहीं है, गन्दगीका खजाना प्राणीका शरीर है। जो चीज शरीरमें-से निकलती है—चाहे बाल हों, चाहे कीचड़ आँखमें-से निकले, चाहे नाकमें-से, बलगम निकले, दाँतके चप्पड़ छूटें या शरीरका पसीना निकले,

मल-मूत्र निकले, पीव निकले, रक्तस्राव हो सब शरीरसे बाहर होते ही गन्दा है। शरीरसे अलगाव गन्दगीका साम्राज्य। बहिर्मुखता ही गन्दी चीज है।

पुण्योगन्धः पृथिव्यां च। पृथिवीमें जो पृथिवीकी स्वाभाविक गन्ध है उसको पुण्यगन्ध बोलते हैं। जो मिलावटी गन्ध होती है उसे पुण्यगन्ध नहीं बोलते। आषाढ़ मासकी जो पहली-पहली वर्षा होती है—तब धरतीसे एक सुगन्ध निकलती है, उसे सूँघकर हाथी मतवाला हो जाता है। वह गन्ध ईश्वरकी है।

सर्वगन्धाः सर्वरसाः। श्रुतिमें वर्णन आता है सारे गन्ध, सारे रस उसके (ईश्वरके) हैं। **पुण्योगन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।** अग्नि क्या है? तैजस तन्मात्रा। यदि तेज न हो तो राख है। राखके ढेरका नाम तेज नहीं। अग्निमें तेज कहाँसे आया? अग्निमें तेजके रूपमें परमात्मा है। चिन्गारियोंको मत देखो, ईन्धनको मत देखो। सूर्यका आकार, चन्द्रमाका आकार मत देखो। आकारनिरपेक्ष जो तेज है उसका नाम तत्त्व है। **अनारोपिताकारं नाम तत्त्वम्।**

जब सोनेमें आकार बना दिया—यह कंगन है, यह कर्णफूल है, यह हार है, यह अंगूठी है तो इसमें आकार का आरोप हो गया। बिना आकारका सोना क्या है? जब अपनेसे अलग मालूम पड़ेगा सोना तो उसमें आकार जरूर होगा। जब सोनेका आकार दिखता है तब सोना अपनेसे अलग है। जब सोनेमें आकार नहीं है तो स्वर्ण कल्पनाका जो अधिष्ठान है वही स्वर्णाकार होकर भास रहा है।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु। ७.९
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्॥ ७.१०

जिस तपस्याके कारण तपस्वी तपस्वी बना हुआ है, जिस

जीवनके कारण हम जीवनधारी बने हुए हैं, वह जीवन, वह तप परमात्मा हैं। जीवन अलग-अलग होते हैं पर जीवन-सत्ता एक होती है। तपस्याएँ अलग-अलग होती हैं परन्तु उसमें तपस्तत्त्व एक होता है। यहाँतक कि सनातन बीज जिससे सबकी उत्पत्ति होती है वह परमात्मा है।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। ७.१०
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्। ७.११

भगवान्‌ने बताया ये बुद्धिमान् लोग हैं। बुद्धिका कोई खजाना भी है कि बुद्धि ही बुद्धि है। एक बुद्धि बाहरकी चीजोंको देख-देखकर भीतर आती है। और एक बुद्धि होती है जो बाहरकी चीजोंको ग्रहण किये बिना भीतर जो ज्ञानस्वरूप, बोधस्वरूप परमात्मा है, वहाँसे प्रकट होती है। अलग-अलग बुद्धिमान्। कोई शब्द-साउण्ड होता है, कोई गन्ध साउण्ड होता है, कोई रूप साउण्ड होता है अलग-अलग होते हैं। ऐसी सूँड होती है जबर्दस्त।

भोज प्रबन्धमें वर्णन आता है—एक गन्धको पहचान लेता था। उसके सामने जब चावल परोसा गया तो उसने कहा—इसमें मुर्देकी गन्ध है। तलाश की गयी। धान कहाँ पैदा हुआ? जिस खेतमें धान पैदा हुआ था उसमें जब धानके पौदोंकी रोपाई की गयी थी उसके पहले एक मुर्दा जलाया गया था। इसको गन्धसाउण्ड बोलते हैं। ढूँढो गन्ध कहाँसे आयी?

कोई स्पर्श-साउण्ड होता है। एक सज्जन बहुत बढ़िया पलङ्ग-पर सुलाये गये। प्रातःकाल बताया—नींद नहीं आयी। उसमें ऐसी कोई चीज थी जो शरीरमें गड़ रही थी। अब तलाश शुरू हुई—निकला बिस्तरके नीचेसे एक बाल। बोले यह गड़ रहा था।

सूक्ष्मतासे यदि अनुसन्धान करो तो सबका जीवन वही है। सबमें तेज वही है। सबमें तत् वही है—'बलं बलवतां' सबका बल वही है। दुनियामें जितना बल है वह सब परमेश्वरका बल है। ऊर्जा—उर्क वेदमें कहते हैं। उसमें भी वही है। कोई चीज रुकी हुई है, बिखर क्यों नहीं जाती ? बिखरी हुई चीजमें भी—अणुमें भी बल कहाँ है ? परमाणुको भी जब तोड़ते हैं तो उसमें-से कितनी शक्ति निकलती है ? जिस शक्तिसे परमाणु-परमाणु बना हुआ है, अणु-अणु बना हुआ है वह बल किसका है ?

हम तो छोटी-छोटी चीज देखकर उसीमें रह जाते हैं। यह बैटरीका बल्ब है। टार्च कैसे जलती है ? बैटरीके बलसे। रेफ्रिजेटर कैसे ठण्डा होता है ? पावर हाउससे बिजली आती है। छोटी-छोटी दृष्टि है। जो पूर्ण विश्वसृष्टिकी बिजली है, जिस ऊर्जामें प्रकृति काम करती है, जिस ऊर्जामें परमाणु काम करते हैं, जिस ऊर्जामें ब्रह्माण्ड काम करते हैं वह ऊर्जाका बल किसका है। वह हमारे अन्दर भी है। पर वह छिप जाता है, जब हम काम और रागसे आक्रान्त हो जाते हैं। काम और राग हमारे ऊपर चढ़ बैठते हैं।

काम क्या है ? अप्राप्तकी प्राप्तिके लिए इच्छा। जो प्राप्त है वह बना रहे और आगे और-और मिले, इसका नाम होगा—राग एवं तृष्णा। यदि तुम परमात्माके बलको समझना चाहते हो—पहचानना चाहते हो तो आगे क्या चीज मिले इसपर-से अपनी नजर थोड़ी देरके लिए हटा दो। इससे आपका कोई नुकसान नहीं होगा। आपकी योजना कार्यान्वित हो, इसपर कोई आक्षेप नहीं है। केवल थोड़ी देर अपनी योजनाको आप अपनेसे अलग कर दीजिये। जो पाना चाहते हैं उससे अपने मनको—अपनी बुद्धिको हटा लीजिये। अपनी आत्माको उसके साथ मत मिलाइये।

आपके जीवनमें जो द्वन्द्व है, जो समस्याएँ है, जो उलझने हैं वे क्यों हैं ? आपने अपनेको दो जगह कर लिया है। अपनेको फाड़ दिया है। आधा तो यहाँ है, आधा वहाँ है। यह चीज हमको मिलनी चाहिए। हमारे पास नहीं है। तो आप यहाँ खड़े हैं और वहाँकी चाहते हैं। इस रूपमें खड़े हैं और उस रूपको चाहते हैं। आपने अपनेको दो हिस्सोंमें बाँट दिया। 'काम'का यह काम है। यह मनुष्यको दो जगह कर देता है। एक मकानमें हैं—दूसरा मकान चाह रहे हैं।

जो चीज है वह आगे भी बनी रहे यह है तृष्णा। तृष्णा माने पिपासा—प्यास। कभी न बुझनेवाली प्यास। आदमी चाहता है कि सारी दुनियाको हम अपनी जेबमें रख लें। यह झगड़ा भी रहेगा कि यह तुम्हारी जेबमें न रहे हमारी जेबमें रहे। भाई-भाईमें झगड़ा होता है। बाप-बेटेमें झगड़ा होता है। पति-पत्नीमें झगड़ा होता है। ये लड़ाई-झगड़े तृष्णासे आते हैं। प्यास बड़ी है और एक-एक आदमीकी प्यास बुझाने लायक वस्तुएँ संसारमें नहीं हैं।

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवस्त्रियः।
नालमेतस्य तृप्त्यर्थं इति मत्वा शमं व्रजेत्॥

दुनियामें जितना धन-धान्य है, जितना सोना है, जितने हाथी-घोड़े हैं, जितने स्त्री-पुरुष हैं, एककी तृप्तिके लिए भी वे पर्याप्त नहीं हैं। प्यास बढ़ती जाती है।

न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति।

यह मनुजीकी सम्मति है। आगमें घी डालनेसे वह नहीं बुझती। आगमें घीकी आहुति देते जाओ वह बढ़ती जायेगी। दशवाला सौ चाहता है, सौवाला हजार चाहता है, हजारवाला लाख चाहता है। तृष्णाका अन्त नहीं है।

बल तो भगवान् है अपने अन्दर, परन्तु वह चाहनेवाले बल नहीं, वह रखनेवाला बल नहीं। वह प्यासवाला बल नहीं। एक बार प्यास छोड़ो, रखनेका मोह छोड़ो और चाह छोड़ो। देखो, तुम्हारे अन्दर छोड़नेसे जो बल प्रकट होता है उसे अनुभव करो। जो ग्रहण करनेसे बल प्रकट होता है उसे मत देखो। त्यागसे परमात्माका जो भीतर बल है वह प्रकट होता है। ग्रहण करनेसे अपना बल, परमात्माका बल बँट जाता है। आप जीव हो जाते हैं, संसार संसार हो जाता है। संसारको पकड़नेका बल अन्य खर्च न करें तो आप जीव नहीं परमेश्वरसे एक हो जायेंगे।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥ ७.११

बोले—भाई, काम छोड़ दें—बिल्कुल छोड़ दें तो निकम्मे हो जायेंगे। महाभारतमें एक प्रसङ्ग आता है, यह मोक्षधर्म पर्वमें है।

अकामस्य क्रिया काचिद् विद्यते नैव कर्हिचित्।
यद् यद् हि कुरुते जन्तुः तत् तत् कामस्य चेष्टितम्॥

एक मङ्की नामके महात्मा थे। उन्होंने सोचा-खेती करें। दो बैल खरीद लिया। दोनोंको एक साथ जोड़ दिया कि ये दोनों कहीं भाग न जायँ। वे बैठ गये और जुगाली करने लगे। इसी बीच एक ऊँट आगया। ऊँटको आते देख वे खड़े हों तबतक वह इनके बीचके हिस्सेमें आगया। बैलोंको बाँधनेवाली रस्सी उसके गलेमें लटक गयी। बैल दोनों टँग गये और मर गये। मङ्की ऋषिने गीताकी रचना की है उसे मङ्की-गीता बोलते हैं।

जैसे आदमीके गलेमें दोनों ओर मणि लटक रही है वैसे ही ऊँटके गलेमें मेरे दोनों बैल लटक रहे हैं। अब बोले खेती कैसे

करोगे ? बोले खेती खतम। एक कामना लेकर आये थे उसमें विघ्न पड़ गया।

ईश्वर कह रहा है—अब शान्त हो जाओ। कामके बिना क्रिया नहीं होती। जब कुछ पाना चाहते हैं तब कुछ करते हैं। सब-के-सब निकम्मे हो जायेंगे अगर कामना नहीं होगी। भगवान्‌ने कहा—नहीं-नहीं, कामके रूपमें मैं ही आता हूँ। यह पाना है इसलिए यह करना है। परन्तु यह कामना ऐसी होती है जैसे अपने हकके धनके लिए कामना हुई—दूसरेके हकके लिए नहीं। अपनी विवाहित स्त्रीके लिए कामना होगी—परस्त्रीके लिए नहीं। कामनाका जो संकोच है वह यह है कि गलत रास्तेपर कामना न जाये। धनके बारेमें न जाये, स्त्रीके बारेमें न जाये, कुर्सीके बारेमें न जाये।

धर्म माने अपने मनको धारण करनेवाली वस्तु। हम अपने मनको बुरी बात बोलनेसे रोक पाते हैं या नहीं। यदि आप गन्दी बात बोलनेसे जीभको रोक पाते हैं तो आपके अन्दर धर्म है। धारणात् धर्मः। झूठ मत बोलिये। बुरी बात मत बोलिये। अहित मत बोलिये। ज्यादा मत बोलिये, बेमौके मत बोलिये। आवश्यक हो तभी बोलिये।

बोलिये तो तब जब बोलिबेकी रीत जानो।

पाँवसे आप चलते हैं—उसके बारेमें भी सोच लीजिये। हाथसे आप काम करते हैं—उसके बारेमें भी आप सोच लीजिये। आँखसे आप देखते हैं—उसके बारेमें भी आप सोच लीजिये। आपका धर्म जाग रहा है या सो रहा है ?

धारणात् धर्मः, धरति इति धर्मः, ध्रियते इति धर्मः। जो यज्ञ यागादि रूप धर्म किये जाते हैं वे जीवके द्वारा धारण किये जाते हैं। हम इतना दान करेंगे, हम इतना व्रत करेंगे, हम इतना नियम

करेंगे। मनुष्य जिसको धारण करे उसका नाम धर्म नहीं। एक धर्मका संस्कार आपके भीतर है और वह धरति—आपको रोककर रखता है। जहाँ पुलिस नहीं रहती है, जहाँ फौज नहीं रहती है, जहाँ कानूनका पालन करानेवाला कोई नहीं रहता है, जहाँ समाज नहीं रहता है वहाँ आपके भीतर बैठा हुआ धर्म आपको धारण करता है।

एकको हम बोलते हैं कार्यधर्म, एकको बोलते हैं कारणधर्म। कार्यधर्मको हम धारण करते हैं और कारणधर्म हमको धारण करता है। **धर्मो रक्षति रक्षितः।** हम धर्मकी रक्षा करते हैं, धर्म हमारी रक्षा करता है। आपके मनमें काम रहे परन्तु वह काम आपके काबूसे बाहर न हो, आपकी धारणा शक्तिके अन्तर्गत हो। आप पाँव रोककर चलें। हाथ रोककर काम करें। जीभ रोककर बोलें। जो आवश्यक हो वह बोलें। जो आवश्यक हो वह करें। जहाँ नियन्त्रण नहीं है वहाँ आपके जीवनमें उच्छृङ्खलता आ जाती है। आप देखो भगवान् कहाँ है?

एक काम वह था जो शङ्करजीको विचलित करना चाहता था। देवताओंने इसे भेजा था। यदि वह विचारपूर्वक आता, प्रार्थनापूर्वक आता—'महेश, तारकासुरको मारना है, आप एक सन्तान पैदा कर दीजिये।' ऐसे नहीं आया।

भँवरे और भँवरी दोनों एक पुष्पपर बैठ गये और मधुपान करने लगे। हरिण अपने सींगसे हरिणीको खुजलाने लगा। काम आया। वह शङ्करजीको योगसे, समाधिसे विचलित करने आया। शङ्करजीकी आँख खुली।

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति।

देवता लोग हाथ जोड़कर बोले—महाराज, ठहरिये, ठहरिये तबतक तो शङ्करजीके नेत्रकी आग कामको जलाने लगी। एक

काम यह है जिसे शङ्करजी जलाते हैं। एक काम वह है जो श्रीकृष्ण भगवान्से रुक्मिणीमें प्रद्युम्नके रूपमें प्रकट होता है। एक काम है विचलित करनेवाला और एक काम है भगवान्का पुत्र—बेटा। बोले—'बेटा तो बाप ही है।' बाप ही बेटेके रूपमें आया है। वह ईश्वरका रूप है। परन्तु धर्मके विरुद्ध नहीं जाना चाहिए।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। ७.११

भगवान् कहते हैं भाव जितने हैं सबमें मैं हूँ।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥ ७.१२

सूर्यकी रोशनीमें स्त्री-पुरुष सब दीख रहे हैं। परन्तु सूर्य तो नहीं कहता कि तुम बुरी नजरसे इसको देखो। सूर्य वस्तुको प्रकाशित करता है। सात्त्विक भाव, कभी दानका भाव आता है, कभी उदारताका भाव आता है, कभी दयाका भाव आता है। वह सब ईश्वरके प्रकाशमें प्रकाशित होता है। कभी राजस भाव आता है—भोग करो, संग्रह करो। कभी तामस भाव आता है—आलस्य है, निद्रा है, प्रमाद है। अन्तःकरणमें ये भाव आते रहते हैं। इन भावोंमें हम बँध जाते हैं। ये सब भगवान्के प्रकाशमें आ रहे हैं, ठीक है परन्तु इनके साथ बँधना नहीं। सात्त्विकके प्रकाशमें प्रकाश ज्यादा है। राजसमें प्रकाश कम है। तामसमें प्रकाश नहीं है। परन्तु सब मालूम पड़ते हैं उसी आत्मरूप परमात्माके प्रकाशमें। इसलिए मत्त एव तान्विद्धि—सब मुझसे मालूम पड़ रहे हैं। उन भावोंमें मैं वह भाव नहीं हो जाता परन्तु वे भाव सब मुझमें रहते हैं।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्व विनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

विनाशी पदार्थोंमें जो अविनाशीके रूपमें मौजूद है जो विषममें सम है। आपकी गिनती होती है विषम—एक, तीन, पाँच। उसमें सम क्या है? एक। यह दोमें भी है, तीनमें भी है। चारमें भी है, पाँचमें भी है। उसके बिना कोई गिनती नहीं होती। दोसे एक-एकको अलग कर लो यह दोनों एक परमात्मा हैं। एक-एक-एक तीनों परमात्मा हैं। संस्कृतमें एक-एक माने होता है—अनुपात। एति अन्वेति इति एकः। जो एकमें, दोमें, तीनमें, पाँचमें है वह एक है। आत्मासे सब प्रकारसे सिद्ध होता है। वह विषममें सम है। वह अस्थिरमें स्थिर है। वह जगत्‌में परमेश्वर है। सारे पदार्थोंका तो हो रहा है विनाश, वह है अविनाशी। उस अविनाशीको देखो, उस परमात्माको देखो।

दुनिया क्या करती है, लोग क्या करते हैं? ये भावोंमें बँध जाते हैं। जो भाव आया—बह गये। एकने हमको बताया [जवान आदमी है]—मैंने सुन्दर वेषभूषामें एक स्त्रीको देखा—घूँघट काढ़े हुए थी। मैंने सोचा वह बहुत सुन्दर होगी। उसका पीछा किया। गन्दी बात हुई न! जब स्त्री समझ गयी कि यह मेरा पीछा कर रहा है तो वह घूँघट हटाकर खड़ी हो गयी। उसका मुँह चेचकके दागसे भरा था। मैं लौट आया। यह बाँधकर कौन ले गया? हम कामके साथ अपने आपको बाँध लेते हैं और उसके पीछे-पीछे जाते हैं। हम क्रोधके साथ अपनेको बाँध लेते हैं। जहाँ क्रोध जाता है वहाँ हम जाते हैं। मोहके साथ अपनेको बाँध लेते हैं। जहाँ मोह जाता है वहीं हम जाते हैं।

संसारमें दोष तीन ही होते हैं। गौतम मुनिने बड़ा विचार करके न्यायदर्शनमें यह निर्णय किया है। दुःख क्यों होता है? शरीरमें अहं होनेसे। इसमें मैं कैसे हुआ? प्रवृत्ति, कर्मके अनुसार दोष क्या है? राग, द्वेष, मोहकी राशि। दोषकी ये तीन राशि

हैं। हम रागके साथ बँधे-बँधे डोल रहे हैं, मोहके साथ बँधे-बँधे डोल रहे हैं या द्वेषके साथ बँधे-बँधे डोल रहे हैं। काममें मुँह आगेको होता है, द्वेषमें मुँह पीछेको होता है। इसने हमारा यह नुकसान किया—पीछेकी ओर मुँह हो जाता है। जिससे डरते हैं उससे द्वेष करते हैं। वह डरावना होता है। यह अपने दिलकी कमजोरी है कि यह फिर हमारा नुकसान करेगा। इसलिए द्वेष होता है। जो हमें मिला है वह हमारे पास बना रहे। यह मोह होता है। इस प्रकार राग, द्वेष, मोह ये तीन दोष होते हैं।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः। गुण माने रस्सी। यह तीन गुण हैं माने रस्सी हैं। ये घसीटकर हमें ले जाते हैं। सात्त्विक भाव, राजस भाव, तामस भाव वहाँ-वहाँ बाँधकर ले जाते हैं।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्। ७.१३

इन तीनों भावोंसे परमात्मा परे है, यह बात मालूम नहीं पड़ती। परे माने आगे नहीं। कुछ जगह बोलते हैं उरला, परला। परला माने उधर। उरला माने इधर, अपने पास। छातीसे लगा हुआ। पर शब्दका अर्थ संस्कृतमें दूसरी ओर होता, अपनी ओर होता है। यह संस्कृत भाषाकी विशेषता है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

पर माने पीछे। इन्द्रियोंसे पीछे तन्मात्रा है। तन्मात्राके पीछे मन है। मनसे पीछे बुद्धि है। बुद्धिसे पीछे अव्यक्त है। अव्यक्तसे पीछे अपनी आत्मा है। आत्माके पीछे और कुछ नहीं है। परे माने आसमानके पीछे—सिरेपर नहीं, धरतीके छोरपर नहीं। परे माने ये सब जहाँ पैदा नहीं हुए हैं, दिखाई नहीं पड़ रहे हैं—वहाँ। उस आत्माको पर बोलते हैं।

भगवान् कहाँ बैठे हैं ? इन्द्रियोंके पीछे भी बैठे हैं। मनके पीछे भी बैठे हैं। लोग उसे पहचानते नहीं। उधर देखते ही नहीं, जिधर भगवान् हैं। उसे पहचान लो तो सब जगह पहचानमें आ जावेगा। यदि नहीं पहचानोगे तो कहीं भी नहीं पहचान सकोगे। अपने घरमें पारस पत्थर है उसे नहीं पहचानते। नदीके किनारे जाते हैं ढूँढ़ने, पहचानते तो हैं नहीं। नदीके किनारे पारस हो भी तो कैसे पहचानेंगे ? घरमें सिल-वट्टा बना रक्खा है। वहाँ तो पहचानते नहीं तो यह जो अपने भीतर बैठा है इसे बना दिया सिल-वट्टा और ढूँढ़ने जाते हैं।

मोको क्या ढूँढे बन्दे—मैं तो तेरे पास हूँ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रवचन : ५

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह संसारी जीव मोहित हो गया है। मोह माने बुद्धिका उलट जाना। मुह् वैचित्त्ये—चित्तका विपरीत होना। जो चीज जैसी है उसको वैसी न समझकर उससे उलटा समझना। चित्तकी विपरीतता क्या है?

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

इन तीन गुणोंको 'एभिः'से व्यक्त कर रहे हैं। 'एभिः' माने ये सबको दीखते हैं। सबको मालूम पड़ते हैं। क्या दीखता है?

यह हड्डी, मांस, चामका तमोगुणी शरीर बना हुआ है। इसमें रजोगुणी क्रिया होती है। संसारका ज्ञान होता है। वह होता है सात्त्विक वृत्तियोंसे। द्रव्यका होना तामसी वृत्तियोंसे होता है। आत्मा इनसे परे है। उसपर इन गुणोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए इनसे उसका कोई बन्धन नहीं होता। शरीर नहीं था तब भी आत्मा था। नहीं रहेगा तब भी आत्मा रहेगा। क्रिया होती है तब भी आत्मा है। नहीं होती है तब भी आत्मा है। वृत्तियाँ उठती हैं तब भी आत्मा है। नहीं उठती हैं तब भी आत्मा है।

एभ्यः परमव्ययम्—इसमें 'एभ्यः' शब्द दूसरी बार आया है। भगवान् इनसे परे हैं। आत्मा इनसे परे है। किन्तु मनुष्य इनमें फँस गया है। देह नहीं था अपनेको देह मानने लग गया। राग संसारसे उपसृष्ट वृत्ति है। हम मोहित क्या हो गये—बुद्धि ही उलट गयी—पक्षपात करके। किसीके प्रति राग करके दूसरेके प्रति क्रूरता करने लगते हैं। उसके प्रति इतना द्वेष कर लेते हैं कि दिल ही जलने लगता है। किसीके प्रति इतना मोह हुआ कि अच्छाई, बुराई, उचित, अनुचित सब भूल गया। यह है मोह जो त्रिगुणमय है। जैसे कोई रस्सी तिगुणी हो—तेहरा बटी हुई हो।

भली बावली बावरी सब कोई भर लेय।
भूप कूपको एक गति गुन बिनु बूँद न देय॥

वह भोलीभाली बावली ही अच्छी है जिसमें-से जो चाहे पानी भर लावे। लेकिन भूप और कूपकी एक ही गति है कि 'गुन बिनु बूँद न देय।' रस्सी न हो, गुण न हो तो एक बूँद भी नहीं देते। संस्कृतमें 'गुण' माने रस्सी होता है। यह त्रिगुण हो तो पूछना ही क्या है? त्रिगुणित रस्सी बहुत मजबूत होती है। उसका बन्धन बहुत मजबूत होता है।

इस देहमें 'मैं', कर्ममें 'मैं', जानकारीमें 'मैं', विद्या—बुद्धिका 'मैं'—यह 'मैं' भी मोह है और क्रियाशीलताका अभिमान भी मोह है। देहका मोह भी अभिमान है। देहका अभिमान भी मोह है। इससे हुआ यह कि जो सबसे परे परमात्मा है वह यहीं इसी शरीरमें है और इस शरीरसे परे भी है। उसीकी वजहसे सारे काम होते हैं और वह सारे कामोंसे परे है। उसीसे सारी वृत्तियाँ होती हैं पर वह वृत्तियोंसे परे है। सतोगुणसे जागरण होता है। रजोगुणसे स्वप्न होता है। तमोगुणसे सुषुप्ति होती है। परन्तु परमात्मा इनसे जैसे परे है वैसे ही त्रिगुणमय भावसे परमात्मा परे है। **नाभिजानाति**—परन्तु लोग उसे पहचानते नहीं। यह है भगवान्‌की माया। एक ही श्लोकमें 'माया' शब्दका दो बार प्रयोग हुआ है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

एषा माया—यह माया है। माया माने जिससे परमात्मा संसारके रूपमें दीखने लगता है। **मीयते जगत् अनेन।** है तो परमात्मा परन्तु परमात्मा नहीं दीखता। जगत् दीखने लगता है। इसका नाम माया है।

मार्कण्डेयजीके सामने भगवान् प्रकट हुए। उनसे भगवान् बोले—'वर माँगो।' मार्कण्डेयजीने कहा—'प्रभो! आपको तो देख लिया, अब क्या माँगे?' 'कुछ तो माँगों'—भगवान्‌ने कहा। 'अच्छा, आपको देखा, आपकी माया नहीं देखी। वही दिखा दीजिये।' मार्कण्डेयजीने कहा।

मार्कण्डेयजी पुण्यभद्रा नदीके तटपर भजन करनेके लिए बैठे। देखा—बादल हो रहा है। तूफान आ रहा है। समुद्र उमड़

रहा है। लो सारी सृष्टिके प्रलय होनेकी तैयारी। घोर हाहाकार! घनघोर अन्धकार! फिर कुछ भी दीखता नहीं—शून्य शान्त! थोड़ी देरमें एक बड़का वृक्ष दीखा। महान् आश्चर्य! उसके पत्तेपर एक बालक। बालकको पाससे देखनेकी उत्कण्ठा हुई। पहुँच गये उसके निकट। निकट क्या पहुँचे—उसकी श्वाँसके साथ उसके भीतर चले गये। हजारों हजार ब्रह्माण्ड देख रहे हैं। हजारों हजार वर्ष बीत रहे हैं। विस्तृत पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर नीचेका दृश्य दीख रहा है। देख रहे हैं बड़ी भारी दुनिया। दीख रहे हैं अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश! और फिर श्वासके साथ धम्मसे बाहर। वही पुण्यभद्राका तट, हिमालयकी तलहटी और बैठकर भजन कर रहे हैं—मार्कंण्डेयजी। घड़ी भरमें देखा सृष्टि और प्रलय। कोटि-कोटि कल्प। जन्म और मरण!

परन्तु यहाँ तो कुछ नहीं था। इस कुछ नहींमें देखा बहुत कुछ। यह दिखानेकी जो शक्ति है, उसे माया कहते हैं। जहाँ कुछ नहीं है, वहाँ सब कुछ दिखा दे उसका नाम है माया। नारदजो-को अभिमान हुआ कि मैं कामविजयी हूँ। सात्त्विक अभिमान था। उन्होंने क्या देखा? एक सुन्दर नगरी। एक राजा है, उसकी सुन्दरी राजकुमारी है। स्वयंवर हो रहा है। लड़कीपर नारदजी मुग्ध हो गये। इस लड़कीसे तो हम ब्याह करेंगे। सुन्दर रूप माँगकर आये तो मिल गया बन्दरका रूप!

अन्तमें कुछ नहीं, न नगर, न राजा, न राजकुमारी। कुछ भी नहीं। इसीका नाम है माया।

एक पुरञ्जनोपाख्यान है श्रीमद्भागवतमें। पुरञ्जनने देखा—लाखों वर्ष, अनन्त वंश-विस्तार। एक नहीं कई जन्म। वह सब क्या था? अविज्ञान सखाका ईश्वरसे बिछुड़ जानेका परिणाम। हो कुछ नहीं मालूम पड़े सब कुछ। इसीको कहते हैं—माया।

एक बार नारदजीने कहा कि—'भगवन् ! हमें माया दिखाइये।' अब यात्रा आरम्भ हुई। आगे-आगे भगवान् विष्णु पीछे-पीछे नारदजी। विष्णु भगवान्ने थोड़ी देर बाद कहा—मुझे प्यास लगी है। यह माया है—विष्णु भगवान्को प्यास नहीं लगती। बिना प्यासके ही प्यास आगयी। नारदजी बोले अभी जल लाता हूँ।

नारदजीको पास ही नदी मिल गयी। नदीके सौन्दर्यने उन्हें आकर्षित किया। उतर पड़े स्नान करने। स्नान करके बाहर आये नारदसे हो गये नारदी। राजकुमार मिल गया। ब्याह हो गया। बच्चे-कच्चे हो गये। पति मर गया। नारदी रो रही है। विष्णु भगवान् आगये। अरे ! नारद तुम पानी लेने गये थे कहाँ चले गये ? नारदको आयी शर्म कूद पड़े पानीमें और नारदीसे नारद होकर निकले। अब देखो न वहाँ नदी थी, न ब्याह हुआ, न पैदा हुए बच्चे !

योगवासिष्ठमें ऐसी बहुत-सी कथाएँ हैं। मायाका जो आश्रय होता है वह उससे मोहित नहीं होता। जो अविद्याका आश्रय होता है वह उससे मोहित हो जाता है। अविद्या जिसके मनमें आती है उसको मोहित कर लेती है। जो माया दिखानेवाला मायाका आश्रय है वह मोहित नहीं होता। माया देखनेवाला मोहित होता है। अविद्या रखनेवाला मोहित होता है। यह अविद्या और मायाका भेद है।

माया जब भगवान्की विद्या देती है तब मनुष्य मुक्त हो जाता है। जब माया अविद्या देती है तब मनुष्य बद्ध हो जाता है। सब ख्याल ही है। मनुष्य अपने ख्यालसे कल्पनासे ही बँधा हुआ है। इससे पार जानेका उपाय क्या है ?

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

एक मछुआ जाल फैलाकर समुद्रमें मछलियाँ पकड़ रहा है ! कौन-सी मछली बचे ? जो उस मछुएके पाँवके पास चली जाय। वह अपना पाँव जालमें तो रखेगा नहीं ? सृष्टि-व्यवहारके लिए भगवान्‌ने एक माया फैला रखी है। आप सभी गृहस्थ हैं, कुछ साधु हैं। एक सत्यपर आप ध्यान दें। बुरा न मानें। क्या कोई भी व्यक्ति अपने साथवालेके प्रति सर्वथा ईमानदार और सच्चा होता है ? क्या माँ अपने बेटेसे जीवनकी सब बातें कह देती है ? बेटा अपने जीवनकी सब बातें माँसे बोलता है ? क्या पति-पत्नी एक दूसरेकी पूरी बात एक दूसरेको बताते हैं ?

इस सृष्टिमें थोड़ा कूट है। थोड़ी माया है। थोड़ा कपट है। थोड़ा छल है। यह है तो थोड़ा तीक्ष्ण, भयंकर सत्य। कौन अपने मनको पूरी तरहसे संसारमें दूसरेके सामने खोलता है। बाप-बेटे, भाई-भाई, पति-पत्नी, बहन-बहन, मित्र-मित्र—क्या अपना दिल पूरा-का-पूरा किसी एक दूसरेके सामने खोलकर रख देते हैं ! यह कपटका कपाट है। यह संसारमें अपना काम करता ही रहता है। यही इस दुनियाकी चमक है। चकाचौंध है, यह खेल हो रहा है।

यदि आप लोगोंमें-से ऐसे कोई हों, जो एक दूसरेके प्रति सर्वथा बिना कुछ छिपाये, बिना कुछ कपट-छलके करते हों तो धन्य हैं, आप नारायणके स्वरूप हैं—चतुर्भुज हैं। आप मायासे मोहित नहीं हैं। आप धन्य और मान्य हैं।

देखें, माया माने कपट, छल, कूट, झूठ—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

'एषा'का अर्थ है अपने दिलमें है। साक्षात् अपरोक्ष है। **अहं परमात्मानं न जानामि। अहं मां न जानामि। अहं त्वां न जानामि।**—एषा। यह आपके दिलमें ही अज्ञानके रूपमें है। सच पूछो तो यह कणके सम्बन्धमें भी है। एक तृणकी ऐसी माया है—आप एक तृणमें क्या देखते हैं? आप समूचे तृणको—कणको देखते हैं। अद्भुत है! उसका रूप। देखते हैं—यह पीला है, यह काला है, यह नीला है। उसमें जो गन्ध है, उसे भी नाकसे सूँघकर मालूम कर सकते हैं। गन्ध तो गुण है, रूप भी गुण है, उसमें जो स्वाद है वह उसका गुण है, उसमें जो स्पर्श है वह उसका गुण है। उसमें कोई ध्वनि भी हो रही हो तो वह भी उसका गुण है।

तो वस्तु क्या है? हम न उसके देशको जानते हैं, न कालको, न उसके स्वरूपको जानते हैं। यह तो इन्द्रियायन सृष्टि है—यह कामायनी सृष्टि है। जिसकी जिसके प्रति कामना है उसको वह अच्छा लगता है। जिसका जिसके प्रति द्वेष है वह उसको बुरा लगता है। दिलमें द्वेष होता है। दिलमें राग होता है। राग हुआ तो अच्छा। जिससे प्रेम होता है वह दूधका धुला होता है और जिनसे द्वेष है वह अच्छा भी हो तो उसकी निन्दा करते हैं। वस्तुओंकी, इन्द्रियोंकी भी पार्टीबन्दी होती है। मनकी भी पार्टीबन्दी होती है।

दैवी ह्येषा गुणमयी—दैवी माने ईश्वरका खेल। भगवान् देखते हैं और कहते हैं—देखो, तुम हमारी मायाके सामने हार रहे हो। अभिमान मत करो। बिना मायाके व्यवहार चलता ही नहीं। यह व्यवहारका चमक है। यह व्यवहारकी तारीफ है। यह व्यवहारकी सुख है। यह व्यवहारका नश्म है। यह व्यवहारकी चाल है। यह माया दैवी है—ईश्वरीय है।

'दिवु क्रिडाजिगीषा व्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्ति गतिषु ।'

यह एक सपना है, माया है। माया माने सपना। सपना है यह और प्रत्यक्ष है।

दैवी ह्येषा गुणमयी—यह बाँधती है। बिना रस्सीके बाँधती है। एक चीज देख लेते हैं। आँखसे देखते हैं। बहुत बढ़िया—मन बँध जाता है। कोई गन्दी चीज देखते हैं। ऐसी मनमें भर जाती है कि कई दिन बाद भी याद आती है। छः महीने, छः वरस बाद भी गन्दगी याद आती है। अच्छाई याद आती है। उसने हमारे मनको बाँध लिया और इसके पास जाना बहुत मुश्किल। **मम माया दुरत्यया।** इसका मालिक मैं हूँ। यह माया मेरी है—और इसको पार पाना बहुत कठिन है। कभी-कभी सच्चाईपर भी ध्यान तो देना चाहिए। सत्यकी बिल्कुल उपेक्षा करके कोई सत्य-जीवन कैसे व्यतीत कर सकता है? सच्चाईकी उपेक्षा करते हैं। आप रागके रंगमें रँगकर दुनियाको देखते हैं। आप द्वेषके रंगमें रँगकर दुनियाको देखते हैं। तो दुनियाकी असलियत कहाँसे दिखायी पड़ेगी ?

जो आपके दुश्मन नहीं हैं—द्वेषके कारण आप उनको दुश्मन मानते हैं, हितैषीको दुश्मन मानते हैं। जो आपका प्रिय नहीं है, हितैषी नहीं है—अपने रागके कारण उसे हितैषी मान लेते हैं। वह आपको धोखा देता है। मोहमें ऐसे फँसे हैं कि आस-पासको छोड़कर कुछ थोड़ा दूरतक सोच ही नहीं सकते। दुरत्यय—जैसे समुद्रको पार करना मुश्किल है वैसे इस मायाको पार करना भी बहुत मुश्किल है। ऐसे फँसे हैं; ऐसे फँसे हैं बच्चू कि छूटनेका कोई ढंग ही नहीं है। इससे छूटनेका एक उपाय है।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

पहिले चक्कीमें दाल पीसते थे, गेहूँ पीसते थे, अब तो सब बिजलीसे काम होता है—उस समय ऐसा देखनेमें आता था कि गेहूँमें या दालमें कोई घुन हो और पीसने लगे तो वह घुन सरककर कीलके पास चला गया। जो कीलके पास चला गया वह पिसनेसे बच गया। वह जिन्दा रहता था। वह ऊपर चढ़कर निकल आता था। इस संसारकी धुरी है परमेश्वर। इस संसारकी कील है परमेश्वर।

मामेव ये प्रपद्यन्ते। इधरसे उदासीन हो गये। इधरसे उपेक्षा हो गयी। अपेक्षामें अन्धापन है और उपेक्षामें दृष्टि है। अपेक्षा माने हम किसीको चाहते हैं। चाहते हैं तो हमारी नजर उसपर बँध जाती है। उपेक्षासे देखते चलो। बड़ा बाजारमें हजारों आदमी, हजारों मोटरें आपके सामनेसे निकल जायेंगी। आपके मनपर उनका कोई संस्कार नहीं पड़ेगा। क्योंकि उपेक्षा दृष्टिसे देखते हैं। लेकिन कोई यार मिल जाय, उसीमें किसीसे प्यार हो जाय, उसीमें किसीसे लड़ाई हो जाय तो अपेक्षा हो गयी। फिर मिलेंगे। ट्रेनमें मिल जाते हैं। प्लेनमें मिल जाते हैं। यह तो बहुत बढ़िया है। इनसे फिर मिलेंगे। अपेक्षा होनेपर हम अपनेको भूल जाते हैं और उपेक्षा होनेपर वह हमारे मनपर कोई संस्कार नहीं डालता।

कहीं न फँसें इसके लिए युक्ति क्या है? यह कि एकसे फँस जायें। एकसे फँस जाओ—यह धर्म है। एक स्त्रीका एक पुरुषसे—एक पुरुषका एक स्त्रीसे विवाह हो गया। धर्मबन्धन हो गया। दूसरी स्त्री या पुरुषके लिए दम्पतीका भाव, पति-पत्नीका भाव हो गया। यहाँसे धर्म प्रारम्भ होता है और आप सारी सृष्टिसे छूटना चाहें तो परमेश्वरसे फँस जाओ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते। एव शब्दका अर्थ है परमेश्वरके सिवाय और किसीकी प्रपत्ति न हो। प्रपदन—प्रपत्ति—जैसे पाँव पकड़ लिया। ऐसा भी वर्णन आता है—एक बार गरुड़पर चढ़कर भगवान् आये। किसीको दर्शन दिया, जब वे गरुड़पर चढ़कर उड़कर वैकुण्ठ जाने लगे तो उसने गरुड़का पाँव ही पकड़ लिया। भगवान्‌के पाँव लटकते थे—उनका पाँव पकड़ लिया। अब पाँव पकड़ लिया तो उनके साथ वैकुण्ठमें चला गया। **मामेव ये प्रपद्यन्ते।** पाँवके निचले हिस्सेको संस्कृतमें बोलते हैं तल और ऊपरी हिस्सेको बोलते हैं प्रपद। अपनी ओरसे भगवान्‌के चरणको पकड़ लो। हम तो इन्हींसे प्रेम करेंगे। परन्तु **मामेव**—इसमें शर्त क्या है? थोड़ा इनसे, थोड़ा उनसे ऐसा नहीं। थोड़ी पुलिसकी शरणागति है, थोड़ी टैक्सवालेकी शरणागति है। थोड़ी मिनिस्टरकी शरणागति है। ऐसे शरणागति बाँटनेसे काम नहीं चलेगा।

मामेव ये प्रपद्यन्ते। एकमात्र प्रभु ही हमारे शरण हैं। इसमें अपनी बुद्धि और अपनी युक्तिकी भी शरण नहीं है। हम अपनी अकलसे यह काम बना लेंगे। अपनी विद्यासे यह काम बना लेंगे। अपने प्रभावसे यह काम बना लेंगे—ऐसा नहीं। सर्वथा प्रभुके प्रति शरणागत हो जाना चाहिए। हीनके प्रति शरणागति सफल नहीं होती। विभीषणकी शरगणागति थी भगवान्‌के प्रति। वह सफल हुआ। विभीषणने सोचा कि शरणागतिमें ही सफलता है। भगवान्‌को भूल गया। वह बोला रामचन्द्र! प्रभु आप समुद्रकी शरण लीजिये, आपका काम बन जायेगा। शरणातिकी महिमा तो विभीषणके मनमें आगयी थी। लेकिन रामकी शरणमें हम हुए तब हमारा काम बना, यह बात बिसर गयी। भगवान् रामचन्द्रने कहा—पहले पहल यह हमारी शरणमें आया है और मन्त्रणा है इसकी, नहीं मानेंगे तो यह कहेगा हमारी नहीं मानते हैं तो

कहीं हमें रावण का आदमी न समझलें, तब मान लिया। परन्तु समुद्र है जड़—

बिनय न मानत जदधि जड़

हीनको शरणागति सफल नहीं होती। कैंकेयीने मन्थराकी शरण ली। न भरतको राज्य मिला, न उसके पति जोवित्त रहे। नीचकी शरणागति नहीं लेनी चाहिए। दशरथने कैकेयीकी शरणागति ग्रहण कर ली कि जो तू कहे सो करेंगे।

मामेभ्यः परमव्ययम्। भगवान्‌की शरण लो। **शिष्यस्तेऽहं शाधि माम् त्वां प्रपन्नम्।** मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। मैं तुम्हारे उपदेशके योग्य हूँ। ईश्वरकी जो शरण लेता है वह संसारकी शरण नहीं लेता। निषेधात्मक दृष्टिसे देखो तो संसारमें किसी वस्तुकी शरण नहीं है। यदि हम सोना, चाँदी, हीरे, मोतीके बिना नहीं रह सकते तो यह वस्तुको शरणागति है। हम यह खाये-पीये बिना नहीं रह सकते तो यह भोगकी शरणागति है। ऐसे कपड़ेके बिना नहीं रह सकते तो यह कर्मकी शरणागति है। हम यह किये बिना नहीं रह सकते तो हम कपड़ेकी शरणमें तो हुए! शरणागति होनी चाहिए परमेश्वरकी।

अकिञ्चनो न अन्यगतिः। यह शरणागति का मन्त्र है। मेरे पास दूसरी कोई वस्तु नहीं है और दूसरेका सहारा नहीं है। हमारे पास इतना धन है। एकने हमको बताया था कि उनके घरमें जैसे—गेहूँ, चावलकी ढेर लगती है—वैसे हीरे-मोतीके ढेर लगते थे। पर वे उनकी रक्षा नहीं कर सके। उनके पास महल था, किला था—सेना थी—वह उनकी रक्षा नहीं कर सका। रक्षाके लिए अकिञ्चन और अनन्यगति चाहिए।

द्रौपदीने युधिष्ठिरसे नहीं कहा कि हमारी रक्षा करो, अर्जुनसे,

भीमसे, भीष्मसे नहीं कहा कि हमारी रक्षा करो। उसने तो कहा कि हे प्रभु! तुम हमारी रक्षा करो। दूसरेका सहारा नहीं है और अपना बल नहीं है। अपने पास भी कुछ नहीं है और दूसरेसे भी कोई आशा नहीं है।

मामेव ये प्रपद्यन्ते। प्रपद्यन्तेका अर्थ वेदान्ती लोग करते हैं कि यह दुनिया नहीं है—परमेश्वर है। जिसको हम देख रहे हैं—वह स्त्री है, वे पुत्र हैं, ये भाई हैं। वह भी ये नहीं—उनमें भी बैठकर परमेश्वर हमारी रक्षा करते हैं। यदि वे भी रक्षा करते हैं तो उनके भीतर बैठा हुआ परमेश्वर हमारी रक्षा करता है।

मायामेतां तरन्ति ते। मायाके पार हो जाते हैं। **तरति शोकं।** तरति माने पार हो जाना। अपनी नजरको पार कर लो। माया-को चीरकर उसमें जो मायाका परदा ओढ़कर परमेश्वर बैठा है उसको देख लो—बस पार हो गये।

> **न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।**
> **माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥**
> **चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।**
> **आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥**

भगवान्‌की शरण कौन नहीं लेते? दुष्कृतिनः। उनके पूर्व जन्मके, इस जन्मके पाप उनके दिमागमें छाये हुए हैं। दुष्कृतः अस्ति येषां इति दुष्कृतिनः दुष्कृत है। बुरे बुरे काम किये हैं। चोर मालिकके सामने जानेमें डरता है। कैसे जावे? कौन-सा मुँह लेकर जावे? वे तो ये भी नहीं हैं, वे समझते हैं—हम बुरा काम करेंगे तो हमारी रक्षा हो जायेगी। मूढाः—मूढ हैं और सचमुच उन्हें मनुष्यत्व ही प्राप्त नहीं है। मनुष्य हुए परन्तु समझदार नहीं हुए। मूढ हुए और मूढ होने पर भी पुण्यात्मा नहीं रहे। पापी हो गये। और आसुरं भावमाश्रिताः उनके मनमें आसुरभाव आगया।

आसुर भाव क्या होता है। असुषु रमन्ते। बस खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ—इतनी ही दुनिया है और कुछ नहीं है। ऐसे लोग भगवान्‌की शरण नहीं लेते। भगवान्‌की शरण लेनेमें बाधा क्या है ? अपना पाप—अपनी मूढता।

ऐसी मूढता या मनकी।
परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओसकणकी।

ऐसी मूढता छायी हुई है। मूढ माने अटक गया—इसके बिना नहीं—इसके बिना नहीं। जरा लिस्ट बनाकर एक दिन देखो कि किन-किन चीजोंके बिना तुम नहीं रह सकते। ऐसा निकलेगा—ऐसा जूता न हो तो हमारी इज्जत नहीं बनेगी। ऐसा कपड़ा नहीं होगा तो हम समाजमें कैसे जावेंगे ? और कपड़े मैच करनेवाली बिन्दी नहीं होगी तो कैसे जावेंगे ? क्या क्या चाहिए ? ऐसा खानेको चाहिए—ऐसा पीनेको चाहिए अर्थात् तुम अपने महत्त्वको भूल गये। इन सब चीजोंमें महत्त्व आगया। ईश्वरके महत्त्वको भूल गये। ऐसी मूढता या मनकी !

मैंने ऐसे सुना कि एक महिला थीं। उन्होंने देवताकी आराधना की और देवता उनपर प्रसन्न हुआ बोला कि देवीजी आप वर माँगिये। उन्होंने कहा कि हमको वर तो नहीं चाहिए, आप जो चाहें सो दे दीजिये। उस देवताने कहा—अच्छा, आप और सुन्दर हो जायँ। तब उसने डाँट लगायी कि आप मुझे अभी कुरूप समझते हैं कि मुझे और सुन्दरता दे रहे हैं। आप देखो, बिना ऐसा शृंगार किये हम सुन्दर नहीं होंगे। बिना स्नो, पाउडर लगाये हम सुन्दर नहीं होंगे। ऐसा लिपस्टिक लगाये बिना सुन्दर नहीं होंगे। इसका अर्थ है कि स्वयंमें तो आप असुन्दर हैं। ऊपरसे जेवर, साड़ी, पाउडर, लिपस्टिक लगाकर आप सुन्दर बनते हैं। स्वयंमें असुन्दर हैं। आपमें तो कुछ है ही नहीं। जब

बाहर की चीज आती है तब आप सुन्दर बनते हैं। जो अपने भीतर परमात्माका गौरव है उसे भूल गये!

अपने भीतर परमात्मा है, आत्मा है, हम हैं या सबसे बड़ी चीज है। हम होश-हवाशमें हैं, यह सबसे बड़ी चीज है। हम बिना किसी चीजके आनन्दमें रहते हैं, यह सबसे बड़ी चीज है। हम अपनेमें ही तृप्त रहते हैं, यह सबसे बड़ी चीज है। **स्वातन्त्र्यं परमं सुखम्।** स्वतन्त्रताका परम सुख है। आप तो पराधीन होकर सुख मानते हैं। इसका नाम है मूढता। दुष्कृती, मूढ नराधम और आसुर भावके आश्रित। असुषु रमन्ते अर्थात् इन्द्रियोंमें रम गये। अब देखो, चार गाली दे दी।

भगवान् रामचन्द्रके मुँहसे ऐसी बात नहीं निकलती। वे राजा महाराजा हैं न! राजकुमार हैं। उनकी कम्पनी पहलेसे ही अच्छी रही है। और श्रीकृष्णको तो ग्वालोंकी कम्पनी मिली। वे तो साले कहकर बोलते एक दूसरेको। इसलिए चार गाली दी। **दुष्कृतिनो मूढाः नराधमाः आसुरंभावमाश्रिता**—ये परमेश्वरकी शरण नहीं लेते। परन्तु पुण्यात्मा लोग जो हैं—**सुकृतिनः** जो सुकृती हैं, वे परमेश्वरकी शरण ग्रहण करते हैं। यह पुण्यात्माकी पहचान है।

पुण्यात्मा भगवान्के भरोसे काम करते हैं। भगवान्की शरण लेते हैं। वे अपने बाहुबलसे भी काम नहीं करते, दूसरेके भरोसे भी काम नहीं करते, अपनी धन-सम्पदाके भरोसे भी काम नहीं करते हैं। अपने नौकर-चाकरके भरोसे भी काम नहीं करते। परमेश्वरके बलपर काम करते हैं। उनको बल है तो परमेश्वरका।

दुनियामें जितना बल है, परमेश्वरसे प्राप्त होता है और वह आपको छोड़कर कभी कहीं नहीं जाता। आपके दिलमें रहता है। 'नारायण' उसका नाम है। नरके हृदय का नाम है नार। नार

माने नरका हृदय वह है अयन—माने निवास-स्थान जिसका ! आपका हृदय ही नारायण है। नारायण माने आपके हृदयमें रहनेवाली वस्तु सोते समय भी आपको छोड़कर नहीं जाता। सोते समय अगर वह छोड़कर चला जाये तो साँस भी आपको छोड़कर चली जायेगी। फिर लौटनेवाला होश भी आपको छोड़कर चला जायगा। सुषुप्ति भी चली जायेगी।

वह आपके हृदयमें रहता है। वह एक पलके लिए भी नहीं छोड़ता। आप ध्यान दें थोड़ा ! आप उसकी गोदमें बैठे हैं। सारी सृष्टि परमेश्वरकी गोदमें एक कणके समान है और उसमें आपका शरीर भी है। आप उसीके सहारे तो बैठे हुए हैं। आप उसीमें चलते हैं। उसीमें बोलते हैं। उसीमें खाते हैं। उसीमें पीते हैं। उसीमें सोते, जागते हैं। उसीमें सोचते हैं। आपकी साँस उसीकी साँसमें चलती है। यह वायु उसकी साँस है। उसीकी रोशनीमें देखते हैं। यह सूर्य, चन्द्रमा उसकी आँख हैं।

वह आपको एक क्षणके लिए भी नहीं छोड़ता। आप उसको भूल जाते हैं। वह आपको नहीं भूलता। आप उससे प्यार नहीं करते हैं, पर वह आपसे प्यार करता है। आप उसे नहीं देखते हैं, परन्तु वह आपको देखता है।

सुकृतिनः जो पुण्यात्मा होते हैं उनका परदा जरा झीना होता है, वे परमात्माको देख लेते हैं। चार रीति बतायी—**आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।** यह मत समझो कि भगवान् मोक्ष ही देते हैं। भनवान् सब कुछ देते हैं। धन चाहनेवालेको धन देते हैं। जो अपना दुःख-निवारण चाहते हैं उसका दुःख निवारण करते हैं। जो उनका ज्ञान चाहता है उसको ज्ञान देते हैं और जो उसके अनुभवमें मग्न रहना चाहता है, उसको अनुभवमें मग्न कर देते हैं।

आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी। आप थोड़ी देरके लिए व्रजभूमिमें चले चलिये। शरीर आपका यहीं रहे। शरीरसे आप कलकत्ता मत छोड़िये। मनसे देखिये व्रजका एक दृश्य। श्रीकृष्णके बिना गोपियाँ व्याकुल हो गयीं।

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्॥

—श्रीमद्भा० १०,३०.५

जैसे हाथीका राजा हथिनियोंको छोड़कर चला जाय तब वे जैसे व्याकुल हो जाती हैं वैसे श्रीकृष्णके विना गोपियाँ व्याकुल हो गयीं—अत्यन्त आर्त। फिर ढूँढने लगीं—हे बड़! तुम बताओ, हे पीपल! तुम बताओ, हे तुलसी! तुम बताओ—ये जिज्ञासु हैं।

दृष्टो वः क्वचिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः॥

—श्रीमद्भा० १०, ३०.५

जमुनाके तटपर बैठीं हैं और—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।

यह गानेवाली—अर्थार्थी हैं। अर्थ तो श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण मिलें। फिर श्रीकृष्ण प्रकट हो गये तो **ज्ञानी च भरतर्षभ**—ज्ञानी हो गयीं। यह गोपियोंके उदाहरणसे इस श्लोकका अर्थ प्रकट किया है। गोपियोंका चरित्र साधारण नहीं है।

आर्तो जिज्ञासु—आर्ती गजेन्द्र है। गजेन्द्र क्या है? आर्त—अभिमानसे उसको यह पीड़ा मिली थी। आर्त होकर उसने छुड़ाई—यह पीड़ा। इन्द्रद्युम्न राजा थे—अभिमानमें मग्न। एक महात्मा उनके पास आये। बोले पूजा कर रहे हैं। अरे! जिस महात्माके तन-मनमें परमात्मा है वह आया है और तुम पूजा कर रहे

हो ! उठे नहीं ! महात्माने कहा—इसे अभिमान है। अभिमानीका अभिमान प्रकट हो जाय तो मिट जायगा। महात्माने कृपा की। जितना अभिमान छिपा था वह सब-का-सब प्रकट हो गया। वह हाथी हो गया—स्तब्ध गजेन्द्र हो गया। अब उसके ऊपर आयी आरत्ति—ग्राहने पकड़ लिया। अभिमानी लोगोंको ग्राह ही पकड़ता है। ग्राह माने पूर्वग्रह। जिद्द—अभिमानी लोग जिद्दी हो जाते हैं। हम करते हैं सो ठीक, हम सोचते हैं सो ठीक। हमारी पकड़ है सो ठीक और सब गलत—हम सही। तो गजेन्द्र-को ग्राहने पकड़ लिया। यह जिद्द कैसे टूटे? यह अभिमान कैसे टूटे? जबतक परमात्मा प्रकट नहीं होगा—तबतक न जिद्द टूटेगी और न जिद्दी टूटेगा।

व्यापक दृष्टि जब प्रकट होती है—तब अहं टूटता है। कब टूटता है? जब सबको देखते हैं। जब सार्वजनिक, सामाजिक, सर्वात्म, भगवद्-दृष्टि होती है तब अहंका गजेन्द्र और इदंका ग्राह दोनों टूट जाते हैं। दोनों मुक्त हो जाते हैं। अभिमानके बदलेमें आरति आयी। आर्त हो गया।

जिज्ञासु परीक्षितने शुकदेवसे कहा—'मुझे परमात्माका चरित्र सुनाइये। मुझे मौतसे डर नहीं है—मौत आये शरीरको ले जाय। आप तो कृष्णचरितका, विष्णुचरितका गान कीजिये—जिज्ञासु हैं। अर्थार्थी—ध्रुव हैं। बोले हम लेंगे पर राजासे नहीं, भगवान्‌से लेंगे। **अपि कीटः पतङ्गो वा भवेयम्**। हमारा इष्टदेव कहे तो हम कीडा-फतिङ्गा होनेको तैयार हैं।

ये लोग देखते हैं—यह पेड़ हैं और भावुक भक्त देखता है यह वासुदेव हैं। एक वैज्ञानिक पीपलके पेड़को देखेगा—इसकी ऐसी लकड़ी है ऐसा पत्ता है। इसमें ये-ये गुण हैं, ये-ये शक्तियाँ हैं। ये-ये दवाइयाँ हैं। यह हुआ वैज्ञानिक अनुसन्धान और एक भक्त कहेगा

यह साक्षात् वासुदेव हैं। ज्ञानी कहेगा—जो आत्मा मेरी है वही इस पीपलकी है। इस शरीरका जो अधिष्ठान और प्रकाशक है वही इस पीपलके पेड़का भी अधिष्ठान और प्रकाशक है। जैसे यह शरीर वैसे ही यह पीपल और जैसी आत्मा मैं, वैसी आत्मा यह। एक ज्ञानीके लिए आत्मदृष्टि है, ब्रह्मदृष्टि है। भक्तके लिए ईश्वरदृष्टि है। वैज्ञानिकके लिए गुणदृष्टि है, रूपदृष्टि है, नामदृष्टि है। ज्ञानकी दृष्टि आरपार हो जाती है—न देहमें बँधती है न विषयमें बँधती है। दोनोंको आरपार करके एक ब्रह्मको देखती है।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥
प्रियो हि ज्ञानीनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः।

भगवान्‌ने कहा—यह ज्ञानी पुरुष क्या है? **ज्ञानी च भरतर्षभ।** **तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः** और सब अनित्ययुक्त हैं। वे कभी भगवान्‌के पास रहते हैं और कभी भगवान्‌से अलग हो जाते हैं। परन्तु ज्ञानी—

सोवत, बैठत, पड़े उतानै। कहैं कबीर हम वही ठिकाने ॥

वही है—स्त्री है कि नहीं? परमात्मा है? पुरुष हैं? नहीं, वह परमात्मा ही है। आप श्रीकृष्णकी लीलापर ध्यान दें ऐसा कौन-सा रूप है जो कृष्णका रूप नहीं है। माँके पेटमें-से निकलता हुआ रूप है, बच्चेके रूपमें रोता हुआ है। दूध पीता हुआ है, मिट्टीमें लोटता हुआ है, मक्खन चुराता हुआ है। काजल लपेटे हुए है, छेड़छाड़ करता हुआ है। भागता हुआ है। कुब्जाके घरमें है। कंसको मारता हुआ है।

ईश्वरका रूप क्या है? यह मामूली बात नहीं है। यह बात आप सर्वधर्म-समत्वसे नहीं जान सकते। क्योंकि जिनका ईश्वर

सिर्फ निराकार है—साकार कभी हुआ ही नहीं, उनकी समझमें यह कैसे आवे ? हमारा तो सर्वोपादान है—सर्वगत—वह एक बच्चा भी है, बूढ़ा भी है—स्त्री भी है, वही पुरुष भी है, वही सूअर भी है, वही मछली भी है, कछुवा भी है, वही गधा भी है। यह सब परमेश्वरका रूप है। नित्ययुक्त, जहाँ है, जब है, जो है, जैसे देखता है उसके रूपमें परमेश्वरको देख रहा है। एकभक्तिः उसके मनमें जने जनेके प्रति प्रीति नहीं है, अखण्ड परमात्माके स्वरूपमें प्रीति है।

प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः। अत्यर्थं शब्दपर ध्यान दें। अत्यर्थं माने अर्थं अतिक्रम। हमारे और उसके बीचमें दूसरा कोई अर्थ नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं है, कोई वस्तु नहीं है। हम और वे बिल्कुल एक हैं। हम दोनोंको अलग करनेवाला कोई नहीं है। जो ज्ञानी है सो मैं हूँ—जो मैं हूँ सो ज्ञानी है।

भरतहिं मोहि कि अंतर काहू।

राम और भरतमें कहीं कोई फरक होता है ? राम भरत दोनों एक दूसरेके इष्ट हैं, दोनों दोनोंके आत्मा हैं। मैं ज्ञानीका अर्थरहित प्रेमी हूँ। परमप्रेमास्पद हूँ। हमारे बीचमें कोई अर्थ, कोई वस्तु नहीं है। और **स च मे प्रियः** वह मेरा प्यारा है। **एकभक्तिर्विशिष्यते** ऐसा ज्ञानी है। एक भक्ति है और विशिष्ट है। तब और सब क्या हैं ? और सब भी बहुत अच्छे हैं। **उदाराः सर्व एवैते**—उदीर्ण है—जो मैं मेरेके चक्करमें पड़ गया वह तो कृपण हो गया, कंजूस हो गया और जो परमात्माकी ओर देखने लगा—आर्त है, जिज्ञासु है, अर्थार्थी है। वह उदार है, उसकी दृष्टि उदीर्ण है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रवचन : ६

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥७.१६

चतुर्विधा—भक्तोंकी विधा चार है। किन्तु भक्ति सबमें अनुगत है। भगवान्‌की भक्तिमें रुचि किनकी होती है ?

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥७.२८

जो पुण्य करते हैं और पापोंका अन्त हो गया है। जिसके मनमें वासना होती है कि हमको यह मिले, यह मिले उनमें दो तरहके लोग होते हैं। एक तो जो पुण्यकर्मके द्वारा ही अपनी वासनाको पूर्ण करना चाहते हैं और दूसरे वे होते हैं कि चाहे पाप भले करें पर हमारी वासना पूरी हो। चोरीसे, बेइमानीसे, छलसे, कपटसे, व्यभिचारसे, अनाचारसे वे अपनी वासनाको पूरी करना चाहते हैं। उनका पाप अभी अन्तगत नहीं हुआ है, वे तो पापमें संलग्न हैं। उनकी वासनाका ऐसा वेग है कि उसको कायदे-से नहीं चला सकते। अपने शरीरको, मनको मर्यादाके अनुसार नहीं चला सकते। जिस देशकी, जिस राष्ट्रकी, जिस समाजकी मर्यादा है उसके अन्दर रहकर काम करना चाहिए।

जब रास्ता छोड़कर मोटर चलाते हैं—उस समय वासना बहुत तीव्र होती है जब निश्चित वेगसे अधिक मोटर चलाते हैं तो वेगकी मर्यादा और मार्गकी मर्यादा, और मान लो ब्रेक न हो मोटरमें और चला रहे हों तो क्रियाकी मर्यादा भी भंग हुई। अपने पास चलानेका लाइसेंस नहीं है—और चलाते हैं। इन मर्यादाओंको भंग क्यों करते हैं? वासनाका वेग तीव्र होनेसे। जैसे आप मोटर चलानेमें मर्यादा-भंग करते हैं, वैसे पैसा कमानेमें भी करेंगे, वैसे परस्त्रीमें भी करेंगे, क्रोधमें भी करेंगे, क्योंकि एक जगह मर्यादाका न होना, सब जगह मर्यादाका न होनेका उपलक्षण है, सकेत है। आपका मन जब वशमें नहीं है तो पता नहीं कब क्या कर बैठेंगे?

पहली बात तो यह है कि पुण्य कर्म करें, विहित कर्म करें, निषिद्ध कर्म न करें। आप वासनाको अपने काबूमें कर लें ईश्वरपर दृष्टि जानेका संयोग ही कहाँ है, जबतक हम बुराइयोंमें फँसे हुए हैं। गिरते हैं, कभी चलते हैं—कभी चलते हैं, कभी गिरते हैं। ऐसा भी एक जीवन होता है। जो चलते हैं उनका गिरना तो सम्भव है। पर गिरकर जो न उठें, न चलें तो यह अपराध है। गिरते-पड़ते आगे बढ़ो। छूट गया, कोई हरज नहीं, गलती हो गयी, कोई बात नहीं। परन्तु फिर उठो तो मुँह आगेकी ओर रहे। वहीं पड़े न रह जावें। कहीं पीछे लौट न आवें। आगे बढ़ें, आगे बढ़ें। ईश्वरकी ओर देखें। 'हे प्रभु! हम तो गिर गये, अब तुम उठालो।'

ईश्वरकी ओर देखते ही मनमें पवित्रता आजाती है। **यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः** पुण्डरीकाक्षका स्मरण हुआ, कमलनयन प्रभुका स्मरण हुआ और आगे बढ़े। यह बात जैसे ज्ञानाभिमानमें गिरनेकी होती है, वैसे ही योगकी सिद्धियोंमें फँसनेपर भी गिरनेकी बात होती है। जो कुछ करते हैं

वह प्रभु ही करते हैं—जबानसे तो ऐसा बोलते हैं, परन्तु वासना-पूर्तिके मार्गपर चलते हैं। कोई कहते हैं—'हम धर्म तो जानते हैं पर हमसे पालन नहीं होता'। कोई कहते हैं—'ईश्वर जो कराता है सो करते हैं'। कोई कहता है—'हम तो सिद्ध हैं, हमारा कोई क्या विगाड़ेगा'। किसीको ज्ञानका अभिमान हो जाता है। ये लोग भगवान्का भजन नहीं कर सकते।

भगवान्का कहते हैं—अर्जुन, तुम उपार्जन करना चाहते हो? कुछ योग, भक्ति, ज्ञान, धर्म और इनका फल चाहते हो? तो पुण्यात्मा बन लो पहले और पुण्यात्मा होकर भगवान्का भजन करो। जैसे मालिककी सेवामें उपस्थित होना है, पिताके सामने जाना है, माताके सामने जाना है। स्वामीके सामने जाना है तो ठीक—बाल भी बिखरे हुए न हों, कपड़े ठीक हों। पहलेसे स्नान कर लें। पवित्रहो लें। तैयार हो लें शृङ्गार करके उसके सामने जाना। यह जानेवालोंके लिए उचित होता है। यह जो पुण्य है—धर्म है; यह जीवात्माका शृङ्गार है।

भजनमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चार भेद हुए। ऐसा लगता है कि अर्थार्थीके बाद जिज्ञासुका स्थान होना चाहिए। आर्त वह है जो कष्ट दूर करनेके लिए भगवान्का भजन करता है। अर्थार्थी वह है जो कुछ पानेके लिए भगवान्का भजन करता है। जिज्ञासु वह है जो भगवान्को जाननेके लिए भजन करता है और ज्ञानी वह है जो भगवान्को जानकर भजन करता है। यदि क्रम बैठाना चाहें तो आर्तके बाद अर्थार्थी और अर्थार्थीके बाद जिज्ञासु और जिज्ञासुके बाद ज्ञानी आना चाहिए। एक व्याख्या तो यह है कि यहाँ क्रम विवक्षित नहीं है। पाठके क्रमसे अर्थका क्रम बलवान् होता है। इसलिए जिज्ञासुको अर्थार्थीसे ऊपर बैठाओ।

श्रीमद्भागवतमें 'अर्थ' शब्दका अर्थ ही दूसरा किया हुआ है।

नलकूबर मणिग्रीवके प्रसंगमें नारदजीने गाना गाया तो वहाँ ऐसा कहा कि; **तयो अनुग्रहार्थाय** नलकूबरऔर मणिग्रीवपर अनुग्रहार्थं ही देवर्षि नारदने यह संगीत गाया। नारदजीने एक बात तो यह सोची कि मणिग्रीव नलकूब्ररसे हमारे धर्मका आविर्भाव हो जावे। जैसे हमको भगवान्‌की स्मृति रहती है, भगवान्‌से प्रेम रहता है, जैसे हमारे हृदयमें वे रहते हैं वैसे ही नलकूब्रर मणिग्रीवके हृदयमें भी हो जावें। नलकूब्रर माने बाँसकी तरह खड़ा। पीठकी रीढ़ उसकी कभी झुकती नहीं। किसीको नमस्कार नहीं करता था। मणिग्रीव माने जो अपने धनका प्रदर्शन करनेके लिए अपने गलेमें वहुत बड़ा हीरा बाँधकर रखता था, देखो हमारे पास इतना बड़ा हीरा है, इतनी बड़ी मणि है। अभिमानसे और दम्भसे दोनों ग्रस्त थे। शराब भी पीये हुए थे। जुआ भी खेलते थे। परस्त्री भी उनके पास थी। नंगे थे, वेहोश थे, परन्तु देवर्षि नारदके मनमें उनके प्रति करुणाका उदय हुआ। उन्होंने कहा जैसे हम भक्त हैं वैसे ही भक्त ये हो जायें और इन्हें भी भगवान्‌की प्राप्ति हो।

'अर्थ' शब्दका अर्थ है भगवत्प्राप्ति। एक तो आर्त है जो सङ्कट, विपत्ति दूर करनेके लिए भगवान्‌का भजन करते हैं। **विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः। विपदो नैव विपदः** = विपत्ति-विपत्ति नहीं है। **सम्पदो नैव सम्पदः** = सम्पत्ति-सम्पत्तिं नहीं है। भगवान्‌को भूल जाना ही सबसे बड़ी विपत्ति है। इसीसे सारे दुःख पैदा होते हैं! नारायणका स्मरण है तो किसी विपत्ति-का स्मरण नहीं है।

श्रीमद्भागवतमें एक प्रसंग आता है, कुन्तीने प्रार्थना की—

विपदः सन्तु सर्वत्र तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यात् अपुनर्भव दर्शनम्॥

हमारे जीवनमें विपत्तिगर विपत्ति आती रहे; क्योंकि

जब-जब विपत्ति आती है तब-तब उसके निवारणके लिए आप आते हैं। आपका दर्शन होता है और जब आपका दर्शन होता है तो संसार दीखता ही नहीं। ऐसी प्रार्थना दुनियामें और कहीं नहीं है। अद्‌भुत है, हमको विपत्ति चाहिए क्योंकि विपत्तिसे बचानेवाले आप जो दर्शन देते हैं! द्रौपदीको सभामें नंगा किया तो क्या हुआ? बचानेके लिए आप तो आगये। दुर्योधनने दुर्वासाको भेजा तो क्या हुआ? उस विपत्तिसे बचानेके लिए, शाकान्न भोजन करनेके लिए आप तो आगये न!

आर्त जिसमें आरति हो। **आरति अस्यास्ति इति आर्तः।** जिसमें आरति हो मत्वर्थी अच् प्रत्यय इसको बोलते हैं। आर्तिमान्‌को आर्त बोलते हैं। आर्तके बाद अर्थार्थीका अर्थ क्या हुआ? जो भगवद्-दर्शन चाहता है। अर्थ माने होता है—जिसको हम चाहते हैं। **अर्थ्यते इति।** जिसकी इच्छा हमारे मनमें रहती है। धन भी अर्थ है, भोग भी अर्थ है। स्वर्ग भी अर्थ है, भगवान् भी अर्थ हैं। **अर्थेन अर्थी।** जो अर्थ चाहता है। जो चाहते हैं उसमें अपने दुःखपर ज्यादा ध्यान नहीं है। जो हम चाहते हैं उसपर ज्यादा ध्यान है। यह उनकी विशेषता है।

हम जप करते हैं। कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! नागपुरमें एक सज्जन थे। उन्होंने साढ़े तीन करोड़ 'हरे राम हरे राम' मन्त्रका जप किया था। कहते थे हमको भगवान्‌का दर्शन नहीं हुआ। दर्शन इसलिए नहीं हुआ कि बीच-बीचमें जब कोई संकट पड़ता था, धनकी आवश्यकता पड़ती थी, तो वह जप करते-करते चाहने लगते थे कि मैं भगवान्‌के नामका जप करता हूँ, मेरा संकट दूर हो जावे। बीच-बीचमें नामके बदले संसारकी वस्तु चाहने लगते थे। नामकी पूर्णता कट जाती थी। भजन करते हैं भगवान्‌का और चाहते हैं संसार, तब तो दूसरी स्थिति हो गयी

और भजन करते हैं भगवान्‌का और चाहते हैं भगवान्‌को—यह दूसरी स्थिति हो गयी।

कितना जप करें तो भगवान् मिलेंगे ? एक करोड़में मिलेंगे, या दो करोड़में मिलेंगे अथवा पाँच-दस करोड़में मिलेंगे ? अपनी जीभके बलको या अपने मनके बलको भगवान्‌की बराबरी करनेके लिए लगा दिया। यह ठीक नहीं हुआ। हमारी जीभ उन्मुख होती है भगवान्‌का नाम लेनेके लिए। उनकी ओर मुँह हो जाना है—बस; मनका मुँह उनकी ओर हो गया। यह उनकी कृपा हो गयी कि हमारी जीभपर भगवान्‌का नाम आने लगा। हमारा दिल भगवान्‌की ओर खिंचने लगा।

जब हमारी जिह्वा उन्मुख होती है तब यह न समझें कि हमारी जिह्वाके जपसे या मनके जपसे भगवान् हमको मिलते हैं—बदलेमें कीमतपर। भगवान्‌की अनिर्वचनीय, अहैतुकी जो कृपा है वह हृदयमें भगवदुन्मुखकी ओर होती है। उन्होंने ही कृपापूर्वक जीभपर अपना नाम दिया, वही कृपा करके हृदयमें अपना रूप देते हैं और वही आँखोंके सामने आते हैं। साधन भी वही साध्य भी वही हैं। उपाय भी वही हैं उपेय भी वही हैं। प्राप्त करनेवाला भी वही, प्राप्त करनेकी इच्छा भी वही, प्राप्त करनेकी साधना भी वही। प्राप्त होनेवाले भी वही—वही वही-वही।

'जिज्ञासु' माने—हम भगवान्‌के स्वरूपको जानें। ज्ञातु-मिच्छा = जिज्ञासा। ज्ञानके लिए उत्सुक है, उसे जिज्ञासु कहते हैं। जानो सही कि परमात्मा है क्या ? ईश्वरके बारेमें सम्पूर्ण ज्ञानकी पहले दिन जरूरत नहीं पड़ती। जितना-जितना भगवान्‌-को जानते जायँ—उतना-उतना उनको चाहते जायँ। यदि भलेमानुषको जानोगे तो उसके प्रति राग होगा, श्रद्धा होगी।

और दुष्टको जानोगे तो उसके प्रति वैराग्य होगा। ज्ञानसे घृणा-द्वेष तो नहीं होना चाहिए ? घृणासे तो अपना दिल गन्दा होता है। द्वेषसे अपना दिल जलता है।

ज्ञानके अभिमानसे आगेका रास्ता बन्द हो जाता है। ज्ञानकी इच्छासे जानते चलें, प्रेम करते चलें। प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है। यह प्रेमका स्वभाव है।

छनही बढ़ै छनही उतरै सो तो प्रेम न होय।
बिनु गुण जौवन रूप धन बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना ते रहित प्रेम वहै रसखानि।

रसखान कहते हैं प्रेम क्या है ? जो गुण देखकर होगा कि बड़े दयालु हैं, बड़े दाता हैं, वड़े उदार हैं—और जब देखेंगे कि कंजूस है तो उस दिन प्रेम घट जायेगा। जवानी देखकर प्रेम करेंगे तो वह घट जावेगा। जवानी देखकर प्रेम करेंगे तो वुढ़ापा आनेपर कैसे रहेगा ? रूप देखकर प्रेम करेंगे तो कहीं मुँहासे निकल गये—कोई दाग पड़ गया तो प्रेम कैसे होगा ? धन देखकर प्रेम करेंगे तो गरीवीमें प्रेम नहीं होगा स्वार्थसे प्रेम करेंगे तो स्वार्थ पूरा होनेपर प्रेम घट जायेगा। केवल हित जानकर प्रेम होता है। यह प्रेमका स्वभाव है—

गुणरहितं, कामनारहितं, प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नम् सूक्ष्मतमम् अनुभवरूपम्।

दुनियामें जिसको प्रेम कहते हैं वह तो शारीरिक भोगके लिए होता है। काम निकालनेके लिए जो प्रीति होती है वह सच्ची प्रीति नहीं होती। जिज्ञासु ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। जिसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसके बारेमें श्रवण, मनन, निदिध्यासन—ये अपने आप ही आजाते हैं। सुनो भगवान्‌को,

सोचो भगवान्‌के बारेमें और बैठो उनके चरणोंमें ज्ञानी च भरतर्षभ। ज्ञानी भी प्रेम करते हैं।

'च'का अर्थ मधुसूदन सरस्वतीने किया है कि ज्ञानीसे भी बड़ा एक होता है—'ज्ञानीभक्त, प्रेमी।' जानकर जो प्रेम होता है—वह अद्भुत है। यहाँतक कि किसीके दोषको जानकर आप उससे प्रेम कीजिये तो फिर उसमें दोष देखकर आपको घृणा नहीं होगी। दोषीको मित्र बनानेकी पद्धति यह है कि उसके ऊपर आप अपना प्रेम वरसाइये। उसका हित चाहिए और असलमें जब आप हित बरसायेंगे तो वह अपने दोषको छोड़ देगा। जबतक वे देखते हैं कि ये हमको नुकसान पहुँचाना चाहते हैं तबतक वह दोषको पकड़े रहेगा। हृदय बदलनेकी पद्धति यही है। आप अपना प्रेम दीजिये उसको। ज्ञान प्रेममें बाधक नहीं है।

सर्वेश्वरस्तु सुधियागलितेऽपि भेदे,
भावेन भक्तिसहितेन समर्चनीयः।
प्राणेश्वरश्चतुरया मिलितेऽपि चित्ते,
चैलांचलव्यवहितेन निरीक्षणीयः॥

भेद नहीं है, फिर भी भक्तिसहित भावसे परमेश्वरकी पूजा कीजिये। देखो प्राणेश्वर है, प्रियतम है पति है, पत्नीका उससे क्या भेद है?

'परदा कहाँ भतार सों जिन देख्यो सारे अंग।'

उसने तो सारे अंग देख लिये, उससे पर्दा कहाँ? परन्तु समाजमें सबके सामने निकलते हैं तो उसके सामने भी कपड़ा पहनते हैं। उसके सामने भी परदा रखते हैं। परमेश्वरसे आत्माका अभेद है, यह सही है; लेकिन जब लोक-व्यवहारमें उतरते हैं तब उसकी भक्ति करते हैं, उसको हाथ जोड़ते हैं। उद्दण्डता नहीं करते उसके साथ।

प्रियतमहृदये वा खेलतु प्रेमरीत्या,
पदयुगपरिचर्यां प्रेयसी वा विधत्ताम्।
विहरतु विदितार्थो निर्विकल्पे समाधौ,
ननु भजनविधौ वा तद्द्वयं तुल्यमेव॥

अपनी प्रेयसी है, वह प्रियतमके हृदयपर विहार कर रही है या उसके पाँवके पास बैठकर, पाँव सहला रही है। प्रेममें क्या अन्तर पड़ा? पाँवके पास बैठनेसे प्रेममें क्या अन्तर पड़ गया? जिसने तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया है, वह चाहे निर्विकल्प समाधिमें रहे और चाहे भगवान्‌के चरणारविन्दकी सेवा करे, उसके लिए दोनों बराबर हैं। ज्ञानी पुरुष भी।

द्वैतं बन्धाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतं अद्वैतादपि सुन्दरम्॥

अद्वैतसे भी सुन्दर है वह द्वैत। दोनों एक बातको जानते हैं। एक बुद्धि है, एक मन है। फिर भी आपसमें बैठ करके वाद-विवाद करने लगते हैं। तब उसका मजा कुछ और होता है। एकने पूर्व पक्ष लिया, दूसरेने उत्तर पक्ष लिया। वेदान्ती हँसते जाते हैं और शास्त्रार्थ करते रहते हैं। बहुत आनन्द आता है। ज्ञानी पुरुष भी भगवान्‌की भक्ति करते हैं।

अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विताः॥

भगवान् ही सबके प्रभव हैं और भगवान् ही सबके प्रवर्तक हैं। यह जानकर ज्ञानी पुरुष भगवान्‌का भजन करते हैं।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

ब्रह्मभूत है परन्तु उसको पराभक्ति प्राप्त हो रही है। वह भक्ति कर रहा है। ज्ञान होनेसे भक्तिमें कोई बाधा नहीं पड़ती

और यदि ज्ञानी भी हो और प्रेमी भी हो—जन्म-जन्मका प्रेमी है और अन्तिम जन्ममें उसको ज्ञान प्राप्त हो गया—तो ज्ञान प्राप्त हो जानेसे उसका जन्म-जन्मका जो प्रेम है वह कहीं चला नहीं जायेगा ? वह प्रेमकी धारा बाधितानुवृत्तिसे बहती रहेगी। यहाँ तक मानते हैं—वेदान्ती कि वेदान्तका ज्ञान होनेपर कोई धर्मात्मा हो जाता है, कोई योगी हो जाता है, कोई भक्त हो जाता है। कोई समाधिमें रहता है, कोई व्यवहारमें लग जाता है ।

क्वचिच्छिष्टः क्वचिद्भ्रष्टः क्वचिद्भूतपिशाचवत् ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।

यह गीता में दो बार आया है—

सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।
सर्वथा वर्तमानोपि स योगी मयि वर्तते ।

कोई वसिष्ठकी तरह पुरोहित हो जाते हैं। कोई जनककी तरह राजा हो जाते हैं। कोई शुकदेवकी तरह निवृत्तिपरायण हो जाते हैं। कोई दत्तात्रेयकी तरह स्वच्छन्द हो जाते हैं। ज्ञान होनेके बाद कोई बाधा नहीं रहती। इसलिए ज्ञान होनेपर भक्त रहनेमें कोई बाधा नहीं है। हम श्री उड़िया बाबाजी महाराजसे कहते थे—'महाराज! ज्ञानीके लिए ब्रह्माकार वृत्तिका विधान कहाँ है ? तो कहते थे—निषेध कहाँ है ? वे प्रश्नपर प्रश्न ही कर देते थे। इसी प्रकार ज्ञानीके लिए भक्ति करनेका विधान कहाँ हैं ? तो उसपर प्रतिप्रश्न है—ज्ञानीके लिए भक्ति करनेका निषेध कहाँ है ? क्यो ? जब वह कर्ता ही नहीं है—तो उसके हृदयमें जैसे पहलेके संस्कार हैं—उसके अनुसार उससे भक्ति होती रहेगी।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।

भगवान् कहते हैं जो आर्त है वह आरति मिट जानेके बाद भक्ति छोड़ सकता है। जो अर्थार्थी है वह अर्थ मिलनेके बाद यदि कृतज्ञ न हो तो भक्ति छोड़ सकता है। जो जिज्ञासु है वह कहेगा— ज्ञान प्राप्त कर लिया—अब जिन्दगीभर उनके साथ लटके-लटके थोड़े ही फिरना है। ये सब छोड़ सकते हैं। परन्तु जो ज्ञानी पुरुष है, वह नित्ययुक्त होता है। **तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः**। क्योंकि वह अपनी आत्माको तो छोड़ ही नहीं सकता। परमात्मा उसकी आत्माके रूपमें प्रकट है, यह उसकी विशेषता है। वह जहाँ है, जो है, जब है, जैसे है वैसे परमात्मा है। **एकभक्तिर्विशिष्यते**। उसके अन्दर भक्ति है—अनन्यभक्ति है। **एकस्य भक्ति**—ऐसा नहीं। **एका अनन्या भक्तिर्यस्य**। उसकी भक्ति अनन्य है। अनन्य है माने वह कहीं दूसरेको देखता ही नहीं। वह दूसरेसे प्रेम करता ही नहीं है। इसलिए ज्ञानी विशिष्ट है। ज्ञान प्राप्त करो, भक्ति तुम्हारी हमेशा बनी रहेगी। बारहवें अध्यायमें भगवान्ने बारम्बार कहा है—

यो मद्भक्तः स मे प्रियः।

तुम करो भक्ति और भगवान् देंगे प्यार। अदले-बदलेकी बात नहीं समरसकी बात है। एकांगी नहीं हैं। कई गुण बता दिये हैं। मेरा भक्त ऐसा होता है—ऐसा होता है। **अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च**। उसमें 'अतीव प्रिय' शब्द एक ही बार है। अत्यन्त प्यारा है। कौन ? जो बच्चा है। **ये तु धर्म्यामृतमिदं प्रोक्तं पर्युपासते**। श्रद्धालु है—मुझे अभी देखा नहीं है। मिला नहीं है। परन्तु श्रद्धा मुझमें रखता है। हमारी सेवा भी नहीं करता है परन्तु भरोसा मेरा रखता है। श्रद्धा है मुझपर और भरोसा है मेरा तो वह **अतीव मे प्रियः**। ऐसे भक्त मुझे अत्यन्त प्यारे हैं। लेकिन यहाँ एक विशेष बात कही, भगवान्का अत्यन्त

प्यारा है पर ज्ञानी नहीं है। वह तो श्रद्धालु है। ज्ञानी कौन है?

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१२.१५

यह ज्ञानी है। यहाँ ज्ञानीकी एक विशेषता बतायी है।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।

यह चातकका प्रेम नहीं है। यह चकोरका प्रेम नहीं है। यह मछलीका प्रेम नहीं है। मछली पानीसे प्रेम करती है। पानी तो मछलीसे प्रेम नहीं करता। चकोर चन्द्रमासे प्रेम करता है। चन्द्रमा चकोरसे प्रेम नहीं करता। सारसको विरहका पता नहीं है और चक्रवाकको संयोगका पता नहीं है। परस्पर प्रीति है। यह सीतारामकी प्रीति है। यह राधा-कृष्णकी प्रीति है। सीता-रामकी प्रीतिमें एकांगी प्रीति नहीं है। तुलसीदासजीकी प्रीति एकांगी है। भरतकी प्रीति एकांगी है। भरतमें तो परस्पर प्रीतिका भी वर्णन आता है। लेकिन एकांकी प्रीतिका उदाहरण भरतमें भी है।

जानहिं राम कुटिल करि मोहीं। लोग कहहिं गुरु साहिब द्रोही॥
सीताराम चरन रति मोरे। अनुदित बढ़ऊँ अनुग्रह तोरे॥

भरतकी भी एकांगी प्रीति है। लक्ष्मणकी भी एकांगी प्रीति है। परन्तु सीतारामकी प्रीति एकांगी नहीं है। वे परस्पर एक दूसरेके प्रेममें डूबे रहते हैं। प्रीतिका जो उत्तम आदर्श है वह सीताराममें है। वह राधाकृष्णमें है। इसको समरस प्रीति बोलते हैं। जितनी प्रीति सीताकी है राममें, उतनी ही प्रीति रामकी है सीतामें। लेना-देना नहीं है। दोनोंकी प्रीति निरन्तर-निरन्तर बढ़ती रहती है। सीताको देखकर राम प्रसन्न होते हैं। रामकी प्रीति देखकर सीता प्रसन्न होती हैं। अनुक्षण दोनोंकी प्रीति बढ़ती

रहती है। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः। ज्ञानीका प्यारा कौन है? भगवान्। भगवान्‌का प्यारा कौन है? ज्ञानी। परन्तु अत्यर्थ-का अर्थ है अर्थं अतिक्रम्य—बीचमें कोई दूसरी चीज नहीं है। दो तरंग उठती हैं अमृतके समुद्रमें। उसमें एक तरंग उठी सीता। दूसरी तरंग उठी—राम। सच्चिदानन्दघन हैं वे।

न आदि न अंत विलास करें दोऊ लाल-प्रियामें भई न चिनारी।

अनादि अनन्तकाल तक दोनों विलास करते हैं। परन्तु एकने दूसरेको पहचाना नहीं। जब श्रीकृष्ण पहचानने चलते हैं तो स्वयं राधा हो जाते हैं। जब श्रीराधा पहचानने चलती हैं तबतक स्वयं कृष्ण हो जाती हैं। प्रतिक्षण नवीन समागम है। लाल और प्रियामें चिन्हारी नहीं है। बीचमें कोई विभाजक रेखा नहीं है। ज्ञानीका आत्मा भगवान्—भगवान्‌की आत्मा ज्ञानी। **अर्थं—अतिक्रम्य।** न ज्ञानीका रूप ज्ञानी है, न भगवान्‌का रूप भगवान् है। दोनों सच्चिदानन्दघन हैं। एक तरंग, एक उल्लास। आत्मा-का उल्लास है भगवान्। भगवान्‌का विलास है ज्ञानी। भगवद्-विलासका नाम है ज्ञानी और ज्ञानीके आत्मोल्लासका नाम है—भगवान्। दोनों एक हैं।

उदाराः सर्व एवैते—ये सबके सब भक्त हैं। चाहे धनके लिए भजें, चाहे आरति-निवारणके लिए। चाहे जिज्ञासासे भजें। ये सब-के-सब उदार हैं। उदार हैं माने ऊपर उठ गये हैं। **उत् ऊर्ध्वंर्यात इति उदारः** जो ऊपर उठ चुका है उसका नाम है उदार। अधिकारीको देखकर जो देता है वह उदार नहीं है। **देशे काले च पात्रे च**—संक्रान्तिका दिन है, दान करो। गंगाजीका तट है, दान करो। ये बड़े भारी विद्वान्, सदाचारी हैं इनको दान करो—यह उदारका लक्षण नहीं है। वह तो कुछ देकर लेना चाहते हैं। उदार वह जो अपनी ओर देखकर देता है, सामनेवाले-

को देखकर नहीं। जितनी उसकी शक्ति है उससे अधिक। उदार कौन है? उदार रघु हैं। उन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया और जब कौत्स आये तो मिट्टीके बर्तनमें उनको अर्घ्य दिया। सीताराम भगवान्‌ने अपने यज्ञमें सर्वस्व दान कर दिया। श्रीरामचन्द्रके शरीरपर रह गयी एक धोती और सीताजीके शरीरपर रह गयी एक साड़ी। भागवतमें वर्णन है यह।

उदाराः सर्व एवैते।

आरति आयी, तकलीफ आयी, तापकलाका उदय हुआ। परन्तु वह दूसरेसे कहने नहीं जाता कि तुम हमारी तकलीफ दूर करो। अपने अन्तर्देशके सूक्ष्मतम प्रदेशमें जो विराजमान भगवान् हैं, वहाँ जाकर उनसे कहता है कि हमारे ऊपर यह संकट है, दूर कर दीजिये। न वह समाजके पास गया, न देवी-देवताके पास गया, न पुलिसके पास गया, न मिनिस्टरके पास गया। कहाँ गया अपना दुःख-दर्द दूर करनेके लिए? यह देखो उदारता उसकी। वह तो ईश्वरके पास गया। एकको धनकी आवश्यकता हुई। वह माँगनेके लिए किसके पास गया? सेठजीके पास धन माँगने गया। तो बाहर गया। यदि भीतर चला जाय कि 'प्रभो! हमको धनकी आवश्यकता है। आप हमको दीजिये।' यह बाहरका परित्याग करके अन्तर्‌के पास जाना है।

जहाँ आपका मैं है वहाँसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिणकी शुरुवात होती है और कालका भूत-भविष्य कहाँसे होता है? जहाँ आपका मैं है। असलमें वस्तुओंका भी प्रारम्भ वहींसे होता है। घट, पट, मठ आदिका भी प्रारम्भ वहींसे होता है जहाँ आपका मैं है। जहाँ आपका मैं है—जिससे आपका मैं है—जिसमें आपका मैं प्रकाशित हो रहा है—उसीसे देश, काल, वस्तु सब प्रकाशित होते हैं। किससे माँगने आप जाते हैं? जिसमें सब हैं

उसके पास आप अपने मैंके अन्तर्देशमें प्रवेश कीजिये और वहाँ जो परमेश्वर है—उसको आप देखेंगे तो देखते ही रह जायेंगे। आपके हृदयमें इतना सौन्दर्य, इतना माधुर्य, आपके हृदयमें ऐसा सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन है। जो आकारोंकी वर्षा कर रहा है वह सद्घन। जो वृत्तियोंकी वर्षा कर रहा है वह चिद्घन। जो सुखों-की वर्षा कर रहा है वह आनन्दघन। वह आपके हृदयमें मौजूद है। आप उसके पास माँगने जायेंगे।

जेहि जाचक, जाचकता जरि जाय जो जारत जोरि जहाँनहिं रे।

आप चलकर उससे याचना कीजिये। अर्थार्थी होकर उसके पास जाइये। आप जब देखेंगे कि आपके हृदयमें ऐसा सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, घन-का-घन, जीवन-का-जीवन आपके हृदयमें बैठा है फिर अर्थकी अर्थना ही नहीं रहेगी। मिट जायगी। जब ज्ञानस्वरूपको आप देखेंगे तो ज्ञानकी इच्छा ही मिट जायगी।

आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी सब बड़े उदार हैं; क्योंकि वे दूसरेको छोड़कर परमात्माके पास आरति-निवारणके लिए, जिज्ञासाकी पूर्तिके लिए, अर्थकी प्राप्तिके लिए आते हैं। परन्तु ज्ञानी—वह तो किसी चीजके लिए नहीं आता। परमात्माका लक्षण क्या है? जिसमें किसी प्रकारका अभाव नहीं है। ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। ज्ञानी तो परमेश्वरकी आत्मा है। क्यों? आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्। माम् एव पर ध्यान दें—आरति-निवारण-पर उसकी आस्था नहीं है। मुझपर उसकी आस्था है। केवल मेरे पास आता है। जहाँ अर्थ प्राप्त होता है उसके पास नहीं जाता। जहाँ जिज्ञासापूर्ति होती है उसके पास नहीं जाता। मामेवका अर्थ होता है—अहं-अहं-अहं। जो फुदक रहा है—मैं-मैं-मैं। वह किसमें फुदक रहा है? हजार बर्तनमें पानी रखा है और उसमें सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। वह कौन है जिसका प्रतिबिम्ब हजार

बटलोइयोंमें पड़ता है? वह परमात्मा है। जो हजारों हृदयकी थालियोंमें, हृदयके हृदोंमें, हृदयके सरोवरोंमें चमाचम चमक रहा है। वह उसको देखता है यही उदारता है।

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।

युक्तात्मा माने दूसरे पदार्थोंसे उसने अपने मनको समेट लिया। निरुत्तर, निरुत्तम, निरतिशय, जिससे बड़ा और कोई न हो, उसको बोलते हैं निरतिशय। उससे, अतिशय उससे विशेष और कोई नहीं है। निरुत्तर—उसके बाद कोई नहीं है। लाजबाव है बिलकुल लाजबाव है। उसका मुकाबला करनेके लिए और कोई नहीं है। **मामेवानुत्तमां गतिम्**—भगवान् अनुत्तम गति है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। ज्ञानकी और एक तारीफ की। भगवान्‌को ज्ञान बहुत पसन्द है।

भगवान् कहते हैं—देखोजी, मैं तो मामूली आदमी हूँ, मैं तो मामूली चीज हूँ। मैं तो सब जगह हूँ। मैं तो सब हूँ। जहाँ चाहो वहाँ मुझे देख लो—जिस रूपमें मुझे चाहो देख लो **वासुदेवः सर्वमिति**। लेकिन इस बातको अनुभव करनेवाला महात्मा दुर्लभ होता है! वह कहीं-कहीं होता है। श्रद्धालुके लिए सुलभ है और संशयालुके लिए दुर्लभ है। **सुलभः दुर्लभश्च**। वह महात्मा केवल श्रद्धालुके लिए सुलभ है और संशयालुके लिए दुर्लभ है। बहुत जन्मोंके बाद होता है ज्ञानवान्। जो ज्ञानी हो जाता है, उसकी क्या पहचान है? **वासुदेवः सर्वं इति मां प्रपद्यते**। सब वासुदेव है यह प्रतिपत्ति, यह ज्ञान, यह अनुभव उसको हो जाता है। परन्तु ऐसा महात्मा सबके लिए सुलभ नहीं है—दुर्लभ है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रवचन : ७

गीता शब्द एक तो संज्ञा है। गीताशास्त्रमिदं पुण्यम्। इस शास्त्रका नाम है गीता। दूसरे भगवत्ता गीता—भगवान्‌ने इसका गान किया हो—असमाप्त क्रिया। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण बोलते हैं—स महात्मा सुदुर्लभः। वह महात्मा दुर्लभ है। अत्यन्त दुर्लभ—सुदुर्लभः। सत्संगस्तु दुर्लभः अगम्य अमोघश्च। सत्सङ्ग दुर्लभ होता है। सत्पुरुषका मिलना कठिन है और मिल जाय तो अगम्य है। जान नहीं पाते कि यह सत्पुरुष है। और पहचान

लें तो अमोघ होता है। कभी व्यर्थ नहीं होता। सन्तो दिशन्ति-चक्षूंषि। सत्पुरुष नेत्रदान करते हैं। बहिरर्कः समुत्थितः। सूर्योदय होता है तो बाहरका नेत्र बाहरकी वस्तुओंको देखता है। सत्पुरुष मिलते हैं तो अन्तरके नेत्र खुलते हैं और अन्तरकी वस्तु दीखती है।

सन्त आत्माहमेव च—मुझमें और सन्तमें कोई अन्तर नहीं है। सन्त ही आत्मा हैं और सन्त ही मैं हूँ। सन्तका मिलना भगवान्का मिलना है। सन्त है कौन? महात्मा है कौन? महात्मा शब्दका अर्थ होता है—जिसकी आत्मा महान् है। महान् है माने सङ्कीर्ण नहीं है, उदीर्ण है—उदार है। वह किसी वर्गमें, किसी जातिमें, किसी समाजमें, किसी प्रान्तमें, किसी राष्ट्रमें आबद्ध नहीं है। जैसे सबकी आत्मा परमात्मा है वैसे सब महात्माकी आत्मा है।

एक महात्माको मैंने देखा—नावमें हम साथ-साथ जा रहे थे। एक गाँवमें नाव रुकी। वहाँके एक पुलिस इंस्पेक्टर दर्शन करने आये। महात्माजी हाथ जोड़ने लगे—रोने लगे। बोले हम गरीब हैं। हमको सताओ मत। लोग देखने लगे यह क्या बोलते हैं? मालूम हुआ कि वह इंस्पेक्टर थानेमें उसी समय कुछ लोगोंको जूतेसे पीट करके आया था। और महात्मा उन पीटे गये लोगोंके साथ तादात्म्य होकर, एक होकर बोल रहे थे—हम गरीब हैं। हमको मत सताओ। संसारमें देवता हैं, दानव हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, सब अपनी आत्मा हैं, ऐसा जो अनुभव करे उसका नाम महात्मा।

महाभारतमें बताया है महात्मा कौन है? जो क्रोधके वेगके वशमें नहीं होता, जो पेटके भोजनकी वासनाके वेगके वशमें नहीं होता। जो मूत्रेन्द्रियके वेगकी वासनाके वशमें नहीं होता

जानबूझकर इन वेगोंको सह लेता है और चाहे कोई कितनी भी निन्दा करे, उसके चित्तपर चोट नहीं पहुँचती। ऐसा उसका हृदय हो जाता है कि चाहे कि उसकी निन्दा करें और उसको चोट पहुँचावें, तो चोट नहीं पहुँचा सकता।

आत्मानं यदि निन्दति, आत्मानं स्वयमेव ते।

यदि वे आत्माकी निन्दा करते हैं तो अपनी ही निन्दा करते हैं। शरीरकी निन्दा करते हैं तो शरीरकी निन्दा तो हम भी करते हैं।

प्रलयस्यापि हुंकारैः चलाचलविचारणैः।
विक्षोभं नैति यस्यान्तः स महात्मेति कथ्यते॥

महात्मा किसको बोलते हैं ? प्रलयकी गर्जना हो रही हो—चर अचर सृष्टि विचलित हो रही हो फिर भी जिसके चित्तमें विक्षोभ नहीं है। जिसके अन्तरमें विक्षोभ नहीं है का अर्थ यह नहीं कि सारा जगत् पीड़ित हो रहा है और वह मौज कर रहा है।

न जानपदिकं दुःखं एकः शोचितुमर्हति।

महाभारतका कहना है कि सारे देशको, सारे समाजको, सारे जनपदको जो दुःख हो रहा हो, उसके शोकका बोझ एक दिमागमें नहीं आना चाहिए। नहीं तो पहले दिमाग ही फटने लग जावेगा, वह करेगा क्या ?

अशोचं प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत् विक्रमम्।

अपनी शक्ति जहाँतक हो, उस विपत्तिके निवारणका, सङ्कटके निवारणका उपाय तो करना ही चाहिए। परन्तु शोकसे अभिभूत

होकर नहीं—भयसे डरके नहीं—मोहसे ग्रस्त होकर नहीं, **अशोचं प्रतिकुर्वीत।** अपनी आत्मामें स्थित रहकर, जो सङ्कट आवे, जो विपत्ति आवे उसका सामना करना चाहिए। उसे दूर करनेका उपाय करना चाहिए। एक सज्जनको ड्राइवरपर क्रोध आया तो आँख लाल हो गयी। मोटरमें हम चल रहे थे। मैंने उनसे कहा उसको तो दण्ड तुम पीछे दोगे, अपने आपको तो दण्ड तुमने पहले ही दे दिया। तुम्हारे हृदयमें जलन हो गयी, तुम्हारी आँख लाल हो गयी। तुम्हारा दिल बिगड़ गया। मैंने तो कहा धीरेसे पर ड्राइवरने सुन लिया। उसने बादमें जब मालिक उतरकर चले गये तब हमसे कहा कि महाराज, आपने हमको बचा ही लिया।

स्वयं अपने आत्माको, अपने हृदयको दण्ड मत दो। महात्मा होता है दुर्लभ। महात्माका ज्ञान क्या है? महात्माका अनुभव क्या है? वह सबको अपने आत्मामें अनुभव करता है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥७.१९

यह ज्ञान बहुत दुर्लभ है सुलभ नहीं। ज्ञानसंस्कारसे संस्कृत बहुत-से जन्म होते हैं। ज्ञानकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए सत्कर्मका अनुष्ठान करना, विवेक करना, वैराग्य होना, शम, दमादि सम्पत्तिको ग्रहण करना पड़ता है। बहुत जन्मोंके संस्कारसे मनुष्यका अन्तःकरण ऐसा होता है कि उसको सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। जन्म होते हैं बहुत और ज्ञान होता है एक। ऐसा नहीं कि ज्ञानवान्‌के बहुत-से जन्म होते हैं। **ज्ञानवान् पुरुषः बहूनां जन्मनामन्ते मां प्रपद्यते**—इसका ऐसा अर्थ नहीं है। **बहूनां**

जन्मनान्ते ज्ञानवान् सन् वासुदेवः सर्वमिति मां प्रपद्यते। तत्त्व-ज्ञान होना, भगवद्ज्ञान होना, आत्मज्ञान होना कोई आसान बात नहीं है।

अनेकजन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

अनेक जन्मके संस्कार होते हैं। और यह बात देखनेसे मालूम पड़ती है। कोई रुईके गोदामसे आवे तो उसके कपड़ेपर कुछ रुईके रेशे लगे होंगे। कोई कोयलेकी खानमें-से निकले तो उसपर कुछ कोयलेके कण होंगे। जो आदमी नरकमें-से आता है वह चिड़चिड़ा होता है—वहाँ बहुत पिटा होता है, बहुत दुःख भोगे हुए होता है—वह चिड़चिड़ाता हुआ नरकमें-से आता है। जो स्वर्गमें-से आता है वह तृप्त होकर आता है। जो साधन-सम्पन्न होकर आता है। जन्मसे ही—**ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद् भुवः**—कहीं-कहीं धरती बड़ी चमकदार होती है। देखनेमें ही—उसके बाल्यावस्थाके खेलमें, बोलनेमें, चलनेमें—एक प्रकारकी विशेषता होती है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् सन्। ज्ञानवान् होता है और फिर उसको परमात्माकी प्राप्ति होती है—अनुभव होता है। परमात्माका अनुभव होनेके बाद जन्म-मरण नहीं है। जन्म-मरण, पाप-पुण्य, राग-द्वेष, स्वर्ग-नरकमें आना-जाना ये तभीतक हैं जबतक परमात्माका ज्ञान, परमात्माका अनुभव नहीं होता। कर्ममें पाप-पुण्य, अन्तःकरणमें—व्यवहारमें रागद्वेष, भोगमें सुख-दुःख और स्वर्ग-नरकमें आना-जाना। ये तभीतक हैं जबतक परमात्माका ज्ञान, परमात्माका अनुभव नहीं होगा।

ऐसा क्या ज्ञान होता है? उस ज्ञानका स्वरूप क्या है?

वासुदेवः सर्वम् इति मां प्रपद्यते।

सब वासुदेव ही है, इस रूपमें वह मुझे अनुभव करता है। प्रपद्यते, प्रतिपद्यते, उसको यह अनुभव होता है कि सब है वासुदेव, सब है परात्पर, परब्रह्म—परब्रह्मके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह उसको अनुभव होता है—यह देखो श्याम, यह देखो श्याम, जहाँ देखो वहाँ भगवान्, जहाँ देखो वहाँ भगवान्! अब एक दार्शनिकोंका प्रश्न है—जहाँ दो पद, दो पदार्थके वाचक होते हैं, वहाँ दो पदोंका अर्थ एक नहीं हो सकता। जैसे एक पद है घड़ा और एक पद है कपड़ा। घट है, पट है। यदि कोई कहे कि कपड़ा घड़ा है और घड़ा कपड़ा है तो ये पद दो हैं, पदार्थ दो हैं, दोनों एक तो कभी हो ही नहीं सकते। बिलकुल असंगत है। कपड़ा घड़ा नहीं हो सकता। घड़ा कपड़ा नहीं हो सकता। तो **वासुदेवः सर्वम्**का क्या अर्थ हुआ? वासुदेव परमात्मा ही सब है। 'सब' शब्द अलग है—'वासुदेव' शब्द अलग है और सब शब्दका अर्थ होता है अनेकका मेल। सब माने सब लोग। इतनी स्त्री, इतने पुरुष, इतने गोरे, इतने काले, इतने नाटे, इतने लम्बे, इतने मोटे, इतने दुबले—सब मिलाकर सब लोग होते हैं। सब शब्दका अर्थ होता है अनेक। अनेकका समूह होता है सब और वासुदेव होता है एक। यह बात कैसे कही गयी कि जो कपड़ा है सो घड़ा है और जो घड़ा है सो कपड़ा है—जो एक परमात्मा है सो सब है—जो सब है सो एक परमात्मा है। यह बात असंगत मालूम पड़ती है। यही है वैदिक दर्शनकी विशेषता।

वेदान्तके सिवाय किसी भी मजहबमें—न जैनमें, न बौद्धमें, न मुसलमानमें, न इसाईमें, न आर्यसमाजमें, न ब्रह्मसमाजमें 'सब परमात्मा है' यह सिद्धान्त नहीं है। किसी-किसी समाजमें परमात्मा मानते ही नहीं। कहीं सिर्फ निराकार मानते हैं। कोई सातवें आसमानमें मानते हैं—यह सब जो हम देख रहे हैं, जैसा

देख रहे हैं, जब देख रहे हैं, जिस प्रकारसे देख रहे हैं—इस विश्व सृष्टिको, यह ज्यों-की-त्यों परमात्मा है। **सर्वं खल्विदं ब्रह्म।** यह श्रुति है। सब ब्रह्म है। **ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।** यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म है। **एवेदं सर्वम्, आत्मैवेदं सर्वम्, ब्रह्मैवेदं सर्वम्, अहमेवेदं सर्वम्।**

ऐसे श्रुति बोलती है। यह सब मैं हूँ। यह सब आत्मा है, यह सब ब्रह्म है। यह सब वही है। इसको कहते हैं सामान्याधिकरण का विचार। सामान्याधिकरण माने दो विभक्तियाँ समान अधिकरणमें हैं। **घटः पटः**—कपड़ा घड़ा है—घड़ा कपड़ा है। कैसे हो सकता है? सब परमात्मा है, परमात्मा सब है यह बात कैसे हो सकती है। चार तरहसे इसकी संगति लगाते हैं। रामानुजाचार्य कहते हैं—परमात्मा है शरीरी और यह जीव और जगत् हैं शरीर। शरीर और शरीरीकी दृष्टिसे एक हैं। परमात्मा है आश्रय, ये जीव जगत् हैं आश्रित। परमात्मा है उपजीव्य और ये हैं उपजीवक। परमात्मा हैं शेषी और ये हैं शेष। जैसे एक आदमीको हम कहते हैं, यह आत्मा है, यह परमात्मा है—तो उसका शरीर भी है, अन्तःकरण भी है, उसके विचार भी हैं, उसके भाव भी हैं—सब मिलाकर उसको बोलते हैं मनुष्य। ऐसे हम परमात्माको हम सब बोलते हैं तो यह पृथिवी, अग्नि, जल, वायु, आकाश, मन, महत्तत्त्व प्रकृति सब मिलाकर बोलते हैं—यह परमात्मा। परमात्माकी प्रकृति है। जीव परा प्रकृति परमात्माकी प्रकृति है। परा प्रकृति और अपरा प्रकृति—दोनों प्रकृतियोंसे शरीरधारी हैं परमात्मा। हम बोलते हैं परमात्मा सब है।

श्रीरामानुजाचार्यजीके—शेष शेषी भावसे—परमात्माके लिए यह जगत् है और परमात्माका शरीर है। शरीर होनेसे शरीरी

पर्यन्त विवक्षित होता है। शरीरीसे लेकर शरीरतक, सब एक परमात्मा है।

श्री निम्बकाचार्यजी महाराज कहते हैं कि वस्तु तो एक है, परन्तु उसकी दो अवस्थाएँ होती हैं। एक कार्य अवस्था और एक कारण अवस्था। जैसे हम कहते हैं—यह पेड़ है—यह बड़का पेड़ है—यह आमका पेड़ है। तो उसमें कार्यावस्थामें तना भी है—डालियाँ भी हैं—फूल भी हैं, फल भी हैं—और बीजावस्थामें वह बिलकुल एक होता है तो यह जीव-जगत् बीजावस्थामें तो परमात्मा होते हैं और व्यवहार-कालमें, प्रपञ्च-कालमें ये पत्ते होते हैं, ये फूल होते हैं—फल होते हैं—डालियाँ हैं—अलग-अलग हैं। कार्य अवस्थामें द्वैत है और कारण अवस्थामें अद्वैत है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोलते हैं, कारण अवस्थाकी दृष्टिसे बोलते हैं। यह अब बीजात्मक है। **वासुदेवः सर्वम्**। यह परमात्माकी ही शक्तिका विक्षेप है, उनकी शक्तियाँ उनके लगती हैं—जीवके रूपमें-जगत्के रूपमें, उनकी शक्तियाँ प्रकट होकर दिखायी पड़ती हैं। यह परमात्मनिष्ठ ऊर्जा है जो जीव और जगत्के रूपमें मालूम पड़ती है। प्राचीन संस्कृत भाषामें इसको शक्तिका विक्षेप बोलते हैं। जो हम चीजें चाहते हैं वह भी परमात्माके लिए और जो शक्ति है वह भी परमात्माकी।

शंकराचार्यने इसकी व्याख्या दूसरे ढंगसे की। **वासुदेवः सर्वम्**। वे कहते हैं कि जब दो पदार्थ हैं—एक विश्व—सर्वम् और एक वासुदेव तो दो पदार्थको एक समझना यह या तो भ्रमकालमें होता है—भ्रमसे आदमी दो चीजको एक समझ लेता है। तब यह तो अविवेक हुआ! अविवेक कालमें वस्तु दो होती हैं और उसको मनुष्य एक समझता है। बाधकालमें एक वस्तु मिथ्या होती है और एक सत्य होती है तब वह मिथ्या वस्तु सत्य वस्तुसे पृथक्

नहीं होती है। सत्य वस्तु ही मिथ्या वस्तुके रूपमें मालूम पड़ती है। एक आदमी भ्रमसे पेड़को, ठूँठको भूतके रूपमें देख ले। वहाँ भूत-पदार्थ और पेड़-पदार्थ एक क्यों मालूम पड़ता है? भ्रमके कारण। रज्जु सर्प क्यों मालूम पड़ती है? भ्रमके कारण। यदि ज्ञान हो जाय तो रज्जु ही है, सर्प नहीं है तो सर्पके मिथ्या होनेका कारण एक पदार्थ है। यह जो सर्व है—सर्व माने सब पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इनसे वने हुए पदार्थ हजार-हजार पदार्थ, लाख-लाख पदार्थ, करोड़-करोड़ पदार्थ ये एक परमात्मामें—केवल उसको न पहचाननेके कारण अलग-अलग मालूम पड़ रहे हैं। असलमें एक सत्य है और उससे अलग यह सर्व नहीं है। तो अलगावकी प्रतीति मिथ्या है क्योंकि अपने अभावके अधिष्ठानमें यह दीखता है। जैसे कोई कहते हैं—मिथ्या भाषण—भाषण मिथ्या नहीं है। भाषण तो है—परन्तु उसका अर्थ मिथ्या है। इसी प्रकार इस जगत्को जैसे वन्ध्या पुत्र असत् होता है ऐसे नहीं बोलते हैं। इस प्रकार परमेश्वरसे अलग यह विश्व-प्रपञ्च नहीं है।

व्रजमें क्या बढ़िया दिखाते हैं श्रीवल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु। सब बछड़ोंको हरकर ले गये ब्रह्माजी—सब ग्वालबालोंको हरकर ले गये ब्रह्माजी। उनकी घड़ी, छींके, बाँसुरी सब गयीं। उनके कपड़े-लत्ते भी गये—वे भी गये—सबको हरकर ले गये ब्रह्माजी। अब वहाँ है क्या?—प्रकृत्ति नहीं, जीव नहीं, श्रीकृष्ण अनेक जीव बन गये, अनेक बाँसुरी नहीं हैं—अनेक बाँसुरी बन गये। अनेक नाम नहीं है—अनेक नाम बन गये। उनके अलग-अलग अन्तःकरण नहीं हैं और उनके अलग-अलग संस्कार नहीं हैं। सबके सब श्रीकृष्ण बन गये। उनका पूर्वजन्म किसीका नहीं था। अन्तःकरण किसीके अन्दर नहीं था, प्रकृतिसे बना हुआ शरीर किसीका नहीं था, पञ्चभूतसे बना हुआ शरीर किसीका नहीं

था। अब यदि हम वहाँ बोलते हैं—वासुदेवः सर्वम्—श्रीकृष्ण ही ग्वाल हैं, श्रीकृष्ण ही बछड़े हैं, वही बाँसुरी हैं, वही उनके कपड़े हैं, वही उसके नाम हैं, वही उनके रूप हैं। वह काला बछड़ा, वह गोरा बछड़ा—वह लाल बछड़ा—वह बड़ा, वह छोटा, वह सुदामा, श्रीदामा, वीरभद्र—सुभद्रा, रेंदा, पेंदा, मधुमंगल, कुसुमासव ये सब कौन हैं? **वासुदेवः सर्वम्।**

ये सब भगवान्‌के रूप हैं। अलग-अलग नाम हैं तो, क्या? अलग-अलग रूप हैं तो क्या? इस प्रकारका अनुभव करनेवाले महात्मा-महात्मा क्यों? इसलिए कि संसारमें जो रागद्वेष होते हैं वे उसमें हैं ही नहीं। देखता है हमारे भगवान् हैं, वहाँ राग करके पक्षपात करनेकी आवश्यकता नहीं है और वहाँ द्वेष करके, किसी-को देखकर जलनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

अन्तःशीतलतायां तु लब्धायां शीतलं जगत्।

जब सब भगवान् हैं तो हृदय शीतल हो गया और हृदय शीतल हो गया तो सारी दुनिया शीतल हो जायेगी। असलमें जब अपना दिल जलता है तो दुनियामें आग लगती है। पहले चिनगारी अपने दिलमें पड़ती है फिर दुनिया जलती है। अपना हृदय शीतल है तो सारी दुनिया शीतल है।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

जिसमें मोह नहीं है, राग नहीं है, द्वेष नहीं है। द्वेषसे क्रोध होता है। रागसे काम और लोभ होते हैं। मोहसे पक्षपात होता है।

सब लोग महात्मा क्यों नहीं हो जाते? सभी हो जायँ—यह तो बड़ी सुगम बात है। बोले नहीं—ज्ञानके चोर हैं कुछ, वे ज्ञान होने नहीं देते। ज्ञानको लूट ले जाते हैं।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः हमको यह चाहिए। **तै तै कामैः**—कामनाके अनेकरूप हैं। जहाँ माया होती है, जहाँ दम्भ होता है, वहाँ एकरूपता नहीं रहती। यह चाहिए, यह चाहिए—आप कोई लिस्ट नहीं बना सकते कि हमको क्या-क्या चाहिए। चाहका अन्त नहीं है। **अनिर्वचनीयैः ये खलु इदानीम् न ज्ञायन्ते तैः तैः**—वे वे कामनाएँ जिनका अभी पता तक नहीं है कि हमारे हृदयमें क्या देखकर क्या पानेकी इच्छा हो जायगी ? आप इस भोगको श्रेष्ठ समझते हैं—इस वस्तुको श्रेष्ठ समझते हैं—**कामान् यत् कामयते**—देखनेमें बहुत मीठे लगते हैं। काम शब्दका एक अर्थ—बहुत मीठा है। देखनेमें मीठा लगता है पर परिपाकमें कड़वा होता है। कई चीज ऐसी होती हैं जो खानेके समय तो कड़वी मालूम पड़ती हैं पर परिपाकमें मीठी हो जाती है। आँवला खानेके समय कसैला मालूम पड़ता है पर परिपाकमें वह मधुर हो जाता है। संसारकी कामनाएँ मनमें आजायें, इसमें कोई दोष नहीं है। अपनेको हीन तो समझना ही नहीं, क्योंकि कामनाको आप पहलेसे नहीं रोक सकते। जब आजायेगी मनमें, उसका उदय हो जायगा तब यह ठीक है कि नहीं, यह ज्ञान हो जायगा ! उस समय उसे जो गलत कामना है वे रोक सकेंगे और अच्छी कामनाको रख सकेंगे।

लेकिन वह तो आपके सोचने-विचारनेसे पहले ही दबे पाँव जैसे चींटी के पाँवकी आवाज सुनायी न पड़ती हो, वैसे ही हृदयमें उदय हो जाती हैं। उनको मना करनेके लिए पहलेसे विवेक चाहिए। पहलेसे वैराग्यका संस्कार चाहिए तब कामनाएँ कम उदय होंगी। लेकिन उदय हो जायँ तो यह कोई अपराध नहीं है। आगयी तो आगयी ! हम जब उनके कहे अनुसार चलने लगते हैं—यहाँ चलेंगे तो यह कामनापूर्ति होगी और गलत जगह चले गये। अब कामना-पूर्ति होगी। पहलेसे कामना का उदय न हो यह एक नम्बरकी वात हुई। उदय होकर शान्त हो जाय यह दो नम्बरकी बात है। उदय होनेपर भी सही जगह ले जाय तो यह तीसरा नम्बर है। यदि गलत जगह पर ले जाये तो आपकी चेतना, आपका ज्ञान, आपकी जीवात्मा नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। क्योंकि आप रामके अधीन नहीं रहे, कामके अधीन हो गये। ये ज्ञानके लुटेरे हैं। कौनसे—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते।

ये काम किससे बनेगा ? अमुक सेठके पास जायेंगे तो यह काम बन जायेगा। पुलिसके पास जानेसे वनेगा या अफसरके पास जानेसे बनेगा। हम अपने आत्मदेव, अन्तर्यामी, परमेश्वरको छोड़कर, अपने हृदय में विराजमान जो प्रभु है, उसकी ओर पीठ करके, दूसरेके पास जाते हैं कि आप हमारी कामना पूरी कर दीजिए।

ऐसे ही जनम समूह सिराने।
प्राणनाथ रघुनाथ सों पति तजि, सेवत पुरुष बिराने॥

अपने पतिदेव हैं अपने घरमें, अपने हृदयमें—और हम दूसरे पुरुषके पास जाते हैं कि तुम हमारी कामना पूरी करो। यह व्यभिचार है, यह अपराध है। हमने ईश्वरकी ओर पीठ कर दिया और दूसरेकी ओर मुँह कर दिया। कहाँ जाते हैं ? **प्रपद्यन्तेऽन्य-**

दवताः। बोले ये काम अच्छे देवतासे नहीं बनेगा। यह तो भूतसे बनेगा, यह तो भैरवसे बनेगा। मुकदमा जीतनेके लिए किसी ओझा-सोखाके पास जाते हैं तो वह कहता है देवताको माँस चढ़ाओ।

अब देवताको चढ़ानेके लिए मांस मँगवाना है। किसीसे घरमें पुरश्चरण हो रहा था तो उसके लिए कितनी योगिनी और कितने भैरव और कितने भूत हैं जो उनसे मांसकी बात करते थे। बलि देकर हम छोटे-छोटे देवताओंसे कामनापूर्ति चाहते हैं। उनके लिए नियम पालन करते हैं। ईश्वरसे नियम पूरा नहीं हुआ तो अब देवतासे नियम पूरा होगा। ऐसा क्यों होता है ? सबकी एक प्रकृति होती है—पूर्वजन्मकी बनी प्रकृति होती है और इस जन्ममें भी होती है। जैसा संग किया और जैसा संस्कार पड़ा, जैसा पढ़ा-लिखा, जिनके साथ रहे—पूर्व जन्मकी प्रकृति जैसी बनी हुई है अपनी-अपनी प्रकृतिके हिसाबसे कम्पनी ढूँढ लेते हैं। जिनका मन तामसिक होता है—जिनका मन राजसी होता है उनको तामस और राजस देवताकी शरणमें जानेसे उनका काम बनेगा, यह विश्वास होता है। किसको घूस दें तो हमारा काम बनेगा ? ये अन्तर्यामीको छोड़कर बाहरकी वस्तुओंके पीछे दौड़ते हैं। वे बिचारे भी मजबूर हैं। क्योंकि उनकी सोसाइटी, कम्पनी ऐसी ही रही है। कम्पनी मनुष्यके जीवनको बनाती है।

आप कैसे लोगोंमें उठते बैठते हैं ? आप कैसे लोगोंकी सेवा करते हैं ? आपके मनमें क्या बननेकी इच्छा है ? इसके अनुसार आपके जीवनका निर्माण हो जायेगा। संगका असर पड़ेगा, श्रद्धाका असर पड़ेगा, अपनी इच्छाका असर पड़ेगा, पूर्व जन्मकी प्रकृतिका असर पड़ेगा। कहाँ जाते हैं आप ? मनुष्यका मन बता देता है कि वह कहाँसे आरहा है। अगर मनुष्यका मन निर्वासन

हो रहा हैं तो पुनर्जन्म नहीं होगा और यदि वासनापूर्तिके मार्गपर जा रहा है तो पुनर्जन्म होगा। यह तो देखने से ही मालूम पड़ जाता है।

प्रकृत्या नियताः स्वया,

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।

अब उसमें बात क्या है—देवता शरीरकी पूजामें भी भक्ति और श्रद्धा होनी ही चाहिए। भगवान् कहते हैं, उस देवताके शरीरमें भी मैं ही रहता हूँ। श्रद्धाके पीछे रहकर वही तो श्रद्धाको फेंकते हैं और श्रद्धेयके पीछे रहकर वही श्रद्धाको लेते हैं यह देने लेनेका जो रोजगार है यह प्रभुका ही है। वही श्रद्धा देते हैं और वही श्रद्धा लेते हैं। तब इसमें दोष क्या हुआ ? दोष यह हुआ कि प्रभुकी पहचान नहीं है। वह समझता है अपनी होशियारीसे, अपनी बुद्धिमत्तासे, अपने नैपुण्यसे, हम यह श्रद्धा कर रहे हैं और जिसपर श्रद्धा कर रहे हैं उसमें परमेश्वर है, यह पहचानता नहीं। बुद्धि नहीं बनती।

एक राज्यमं राजकुमारीका विवाह हुआ। उस अवसरपर राजकुमार नहीं आ सका। तव उस राजकुमारकी तलवारपर सिन्दूर डालकर उसकी माँग भर दी। ऐसी राज्योंकी रीति थी। उसको युद्धमें जाना था इसलिए चला गया था। युद्ध जीतकर लौटा तो ससुराल गया और ससुरालमें बाहर सरायमें ठहर गया और ऐसी साँठगाँठ जोड़ी कि जिससे उसका विवाह हुआ था, वही लड़की उससे मिलनेको तैयार हो गयी। मिलनेपर उसने बता दिया कि मैं तो तुम्हारा पति हूँ जिससे तुम्हारा विवाह हुआ था। वह लड़की मूच्छित होकर गिर पड़ी। क्यों ? इसलिए कि वह पतिके सामने व्यभिचारिणी सिद्ध हो गयी। उसने कहा—अव इनको मुँह दिखाने लायक नहीं हूँ। था वही जिससे उसका विवाह हुआ था परन्तु बिना जाने वह उससे मिलने चली गयी

तो अज्ञान भी एक अपराध होता है। हम जहाँ-कहीं जाते हैं, जिस किसीकी शरण लेते हैं। जिस-किसीसे अपना काम बनाना चाहते हैं लेकिन उसके भीतर जो परमेश्वर है उसको पहचानते नहीं।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥७.२२

भगवान् बड़े चालाक हैं। बड़े बुद्धिमान् हैं। संसारमें सारी बुद्धि ईश्वरकी बुद्धिमें-से ही निकलती है। देखते हैं इसके अन्दर श्रद्धा है। बल्कि गीतामें तो यहाँतक कह दिया है कि शास्त्र-विधिका उल्लङ्घन करके भी यदि कोई श्रद्धा करता है तो वह श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी, तामसी होती है। उस श्रद्धाके हिसाबसे फल मिलता है।

श्रद्धामें फल देनेकी शक्ति है परन्तु अन्धी श्रद्धा हो गयी जहाँ श्रद्धेय का ज्ञान नहीं है। फल दे रहा है कोई और समझ रहे हैं किसीको। यही श्रद्धाकी अन्धता हुई। परमेश्वरकी पहचान नहीं रही। इस देवताके भीतर फल देनेवाला वही परमेश्वर है। देवतापर तो दृष्टि गयी परन्तु परमेश्वरपर दृष्टि नहीं गयी। भगवान् कहते हैं—मैं ही फल देता हूँ और तत्काल फल देता हूँ। वह जो चाहता है वह फल भी देता हूँ। लेकिन वह जो फल मिलता है वह अनन्त परमेश्वरके द्वारा मिला। यह हमारी बुद्धि ग्रहण नहीं करती। इसलिए फल मिलनेके बाद वह देवता भी छूट जायगा और वह परमेश्वर भी छूट जायगा। लेकिन यदि यह ज्ञात हो कि यह फल हमें परमेश्वरसे मिला, तो परमेश्वर अनन्त है, परमेश्वर पर और श्रद्धा होगी। आप भी बने रहेंगे। परमेश्वर भी बना रहेगा। आपकी श्रद्धा भी बनी रहेगी और आप कहेंगे, यह परमेश्वर हमको फल देनेवाला है।

पूर्वमीमांसामें कर्मसे अपूर्वकी उत्पत्ति करके फलकी प्राप्ति मानते हैं। परन्तु वेदान्त शास्त्रमें, उपनिषद्‌में, गीतामें यह बात मानी जाती है कि कर्म तो जड़ है, अन्धा है। कर्म तो कृतक है। कर्म तो अपना बनाया हुआ है। वह स्वयं फल देनेमें समर्थ नहीं है। असलमें ईश्वर ही फल देता है। कर्मकाण्डी लोग कर्मसे फलकी प्राप्ति मानते हैं, वेदान्ती परमेश्वरसे फलकी प्राप्ति मानते हैं। **अन्तवत्तु फलं तेषां।** उनका जो फल है वह अन्तवत् है। अन्तवत् माने एक बार वह अपने अन्तःकरणमें प्रतिफलित होगा। फल शब्दका अर्थ ही यह है। फल बाहर नहीं मिलता, फल भीतर मिलता है। यदि आपको लाखों-करोड़ों रुपयेकी प्राप्ति हो जावे और आपको मालूम न पड़े तो कुछ मिला? जबतक मालूम नहीं पड़ेगा तबतक कुछ नहीं मिला।

एकके पास सुन्दरी स्त्री आनेवाली है और महात्माने एक नस दबाकर समाधि लगा दी। आयी और गयी। पता ही नहीं चला कि कब आयी और कब गयी। फल मिला?

भोग हमेशा ज्ञानात्मक होता है। **निर्गुणं गुणभोक्तृ च। भोक्तृत्वं नाम उपलब्धृत्वं**—उपलब्धिका ही नाम भोग है। आपके जीभपर नमक पड़ा, नमक मालूम पड़ा तब सलोनेपनका स्वाद आया। आपकी जीभपर शक्कर पड़ी। जब शक्कर मालूम पड़ी तब मिठासका अनुभव अनुभव हुआ। भोग होना माने मालूम पड़ना होता है। मालूम पड़ना और भोग होना एक ही चीज है। भोग अलग और ज्ञान अलग, ऐसा नहीं होता। भोग ही ज्ञान है, ज्ञान ही भोग है। आपका ज्ञान कहाँ है, इसको देखें। फलकी उत्पत्ति कहाँ होती है? फल हमेशा अन्तरमें होता है। रुपया मिलना फल नहीं है। रुपया मिलनेपर जो सुख होता है वह फल है। क्योंकि रुपया नहीं खाया जाता। सुखका भोग

होता है। स्त्रीका भोग नहीं होता। स्त्रीका जो सुख मिलता है अन्तःकरणमें उसका भोग होता है। कुरसीसे भोग नहीं होता, कुरसी मिलनेसे अन्तःकरणमें जो भोग होता है, उसका सुख होता है। सुख और ज्ञान अलग-अलग नहीं होते। सुख हमेशा ज्ञानात्मक होता है।

अन्तवत्तु फलं तेषां। ईश्वरके अनुग्रहसे हमारा अन्तःकरण सुखाकार हो। यदि देवताके अनुग्रहसे मानेंगे और ईश्वरके अनुग्रहसे मानेंगे तो उसमें अन्तर कहाँ पड़ेगा? अन्तर यही पड़ेगा कि देवता तो तौलके फल देता है आप जितना नियम पालन करोगे, जितनी पूजा करोगे, फल भी उसके परिमाणमें ही प्राप्त होगा।

एक आदमीको चाहिए बेटा और वह पाँच मिनटतक एक मन्त्रका जप करता है। अब बेटा तो है बड़ी चीज और चाहता है पाँच मिनटके रोजके जपमें—वह कैसे मिलेगा? एक आदमी चाहता है करोड़ रुपया और उसके लिए पाँच सौ रुपयेका दान करता है। बड़ा प्रतिबन्ध होता है तो उसके लिए बड़ा अनुष्ठान करना पड़ेगा। यदि आपको अनन्त फलकी प्राप्ति चाहिए तो आप अनन्त परमेश्वरकी आराधना कीजिये। मरनेवाला देवता, डीह-डामरमें रहनेवाला ग्राम देवता, वेचारा एक गाँवका भूत, एक गाँवका प्रेत थोड़े दिनतक रहनेवाला, फिर वह भूतयोनिसे से छूट जायगा, वह देवता होनेपर भी नरकमें चला जायगा। देवता होनेपर ब्रह्मलोकमें भी चला जायगा, मुक्त भी हो जायगा। उसकी तो ड्यूटी ही थोड़ी है तो वह वेचारा चपरासी, आपको कितना फल देगा?

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।

इस देनेवालेका अधिकार वहुत थोड़ा है और आपकी वुद्धि भी

छोटी है—अल्पमेधसाम् । अल्पमेधस् है—छोटा-सा यज्ञ करते हैं। मेधस् माने यज्ञ भी होता है। थोड़ा देते हैं, लेना चाहते हैं बहुत। पाँच रुपयेका दान करके पाँच हजार नहीं, पाँच लाख चाहते हैं। देवताओंको मानो हिसाब ही नहीं आता है। **छायेव कर्मसचिवः**—वह तो अपनी परछाँई है। वह देता है तौलकर। जितना दो उतना लो। परन्तु परमेश्वर जो है वह जिसमें जितना कम सामर्थ्य है, उसको उतना अधिक देता है। परमेश्वर-के दानमें यह विशेषता है।

सनत्कुमारके सामने ईश्वरके प्रकट होनेकी कोई जरूरत नहीं। उनका ज्ञानसे ही काम चल गया। शुकदेवका ध्यानसे ही काम चल जाता है। वसुदेव देवकीके सामने प्रकट भी होकर छिप जाते हैं और जब उनके मरनेका समय आता है तब नारद-जीसे कहलवाते हैं कि ये परमेश्वर हैं। बीचमें ज्ञान हुआ था तो भूल गये। परन्तु जिनकी जाति ऊँची नहीं है, जिनका आचार ऊँचा नहीं है, जिनका ज्ञान ऊँचा नहीं है, उनको उठानेके लिए—जैसे धरतीमें कोई ताकतवर आदमी गिरा हुआ हो और उसकी खुदकी ताकत हो तो उसको उठानेके लिए थोड़ी-सी ताकत लगानी पड़ती है—थोड़ी-सी सहायता करनी पड़ती है। लेकिन कोई आदमी गिरा हुआ हो और उसमें उठनेका सामर्थ्य ही न हो तो पूरी शक्ति लगाकर उसको उठाना पड़ता है। भगवान्, जो साधनसम्पन्न होते हैं, उनको उठानेके लिए थोड़ी-सी ताकत लगाते हैं अपने सङ्कल्पसे, अपनी शक्तिसे, अपने इशारेसे, उनको उठा लेते हैं। लेकिन जो दीन हैं, हीन हैं, जिनके पास कोई शक्ति नहीं है, साधन नहीं है, उनके लिए तो स्वयं आते हैं, आकर दोनों हाथसे उठाते हैं। अपनी छातीसे लगाते हैं। जेहि अति दीन पियारे। बहुत प्रिय—बहुत प्रिय वह दीन उनको होता है।

अल्पमेधसाम्—अपनी वुद्धि तो छोटी चीजोंमें लगा दी। **देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।** देवताकी आराधना करनेवाले इन्द्रके पास जायेंगे। इन्द्र कितने दिन रहेंगे? एक मन्वन्तर। मन्वन्तर पूरा होनेपर तो इन्द्र ही बदल जायगा—मिनिस्टर ही बदल गये। ब्रह्माजीका एक घण्टा भी नहीं। ऐसा मान लें कि ब्रह्माजीकी आयु सौ वर्ष है। उनके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। अर्थात् चौदह घण्टे समझ लो। एक-एक मन्वन्तरका एक-एक इन्द्र होता है। एक घण्टेके लिए इन्द्र होता है। आपके ऊपर इन्द्र प्रसन्न हो जाय तो ब्रह्माजीके एक घण्टेके लिए कोई चीज दे सकता है। इतनी ही उसकी गति है। आप देवताको प्रसन्न करेंगे तो देवताके पास जायेंगे और यदि **मद्भक्ता यान्ति मामपि** जो भगवान्‌की भक्ति करेगा वह भगवान्‌के पास जायेगा। उनका घण्टा कितना? बोले ब्रह्माजीका एक घण्टा—एक मन्वन्तर, चौदह मन्वन्तरका एक कल्प और उससे बड़ा महाकल्प। विष्णु भगवान्‌का एक क्षण, ब्रह्माका एक महाकल्प—उनका पूरा जीवन शिवका एक क्षण, विष्णुका पूरा जीवन और परमेश्वरका एक सङ्कल्प और शिवका पूरा जीवन। परमात्मामें यह है सङ्कल्प कल्पित। यदि वह अगम्य—अद्वितीय वस्तु आपको मिल जाय तो आपके फलका, प्रतिफलित हुआ। आपके अन्तःकरणमें जो वह विशाल है उसका कोई अन्त ही नहीं है।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।७.२३
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।।७.२४

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

●

प्रवचन : ८

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।

भगवान्‌ने यह विभाग कर दिया कि जो देवताकी पूजा करता है वह देवताके पास पहुँचता है और जो मेरी भक्ति करता है वह मेरे पास पहुँचता है। यहाँ भक्तिकी स्पष्ट दो विभक्ति कर दी। विभक्ति माने विभाग। व्याकरणमें विभक्ति शब्दका प्रयोग होता है वह बँटवारेके लिए होता है। यह कर्त्ता है, यह कर्म है यह करण है। विभाग करनेके लिए ही विभक्ति होती है। विभागो-विभक्तिः। देवताका यजन—देवताकी आराधना। देवता लोग होते हैं एकांगी। जैसे इस शरीरमें आँख है एक देवता—एकांगी। वह केवल वस्तुको अपने रंगमें रंगके रूप दिखाती है। जीभ एक देवता है—वह केवल वस्तुका स्वाद देती है। ये देवता हैं वाक्, चक्षु, श्रवण, मन। इनकी गति, इनका क्षेत्र बँधा

हुआ है। रूपके क्षेत्रमें नेत्र देवता काम करते हैं। श्रवणके क्षेत्रमें कर्ण देवता काम करता है। ये एक-एक विभागके अधिकारी होते हैं और अपने विभागकी भी पूर्णता इनमें नहीं होती। यह नहीं कि वे कानसे सब कुछ सुन सकें या आँखसे सब कुछ देख सकें। इनकी यदि आराधना की जाय, इनका यजन किया जाय, इनकी पूजा की जाय तो अपने क्षेत्रमें आपकी उन्नति कर सकते हैं। जो भगवान् हैं ये किसी एक विभागके अध्यक्ष नहीं हैं। असल-में सब देवताओंके गोलकमें वेष बदल-बदलकर वही पान करते हैं।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥७.९

भगवान्‌ने कहा कि सूर्यमें जो तेज है, वह मेरा है। चन्द्रमामें जो तेज है, वह मेरा है। अग्निमें जो तेज है, वह मेरा है। अर्थात् मैं ही आँखमें देखनेकी रोशनी देता हूँ। मैं ही मनमें सोचनेकी रोशनी देता हूँ। मैं ही कानमें सुननेकी रोशनी देता हूँ। यह भी कह दिया कि मैं सूर्य, चन्द्र, अग्निको तो तेज देता हूँ परन्तु ये मुझे प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं है।

ईश्वरको प्रकाशित करनेके लिए सूर्य, चन्द्रमाका प्रकाश नहीं चाहिए—अग्निका प्रकाश नहीं चाहिए, माने नेत्रज्योति, वाक्-ज्योति, मनोज्योति इनके प्रकाशमें परमात्मा नहीं दीखता है। वह इनको प्रकाशित करनेवाला है। आप जिसकी पूजा करेंगे वही हो जायेंगे।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥७.२१

आप जिसपर श्रद्धा करेंगे वही हो जायेंगे। यच्चित् तन्मये मर्त्याः। मनुष्यका चित्त जहाँ है वह वहीं है। उसका मन जो हो

गया वह वही हो गया। मनुष्य शरीर नही है। मनुष्य मन है। उसका मन देवतामें है तो देवता हो गया। उसका मन राक्षसमें है तो राक्षस हो गया। उसका मन परमात्मामें है तो परमात्मा हो गया। परमात्माका रूप देखनेका प्रयास कीजिये—परमात्मा-का स्वरूप सुननेका प्रयास कीजिये। परमात्माको मनमें लाकर बोलने का प्रयास कीजिये। यदि आप संसारको मनमें चढावेंगे तो आपका मन, वाणी, नेत्र सब संसारमय हो जायेंगे। मद्भक्ता यान्ति मामपि। भगवान्‌की भक्ति कीजिये और भगवान्‌के पास पहुँच जाइये। अब यह प्रश्न हुआ कि जैसे देवता लोग हैं, ऐसे भगवान् भी कुछ होंगे। भगवान् अपनी विशेषता बताते हैं।

जैसे देवताओंकी जाति होती है—उनका विभाग होता है उनके क्षेत्र होते हैं—वैसे हमारा नहीं है। इन्द्र, चन्द्रादि दर्शन देते हैं वैसे राम, कृष्णादि भी तो दर्शन देते हैं। आप साइंसकी नोकपर इस बातको मत परखिये। ईश्वर कभी अपनी जाँच करानेके लिए मशीनपर नहीं चढ़ता कि तौल लो, हमारा वजन कितना है? नाप लो, हमारी कितनी लम्बाई, कितनी चौड़ाई है। नाप लो, हमारी कितनी उमर है। वह किसी देश, काल और वस्तुके तराजूपर अपनी उमर नपवाने नहीं आता।

का पूछौ साधौ उमर हमारी।
छप्पन कोटि जादव भये, दस कोटि कन्हाई।

वह व्यक्तिके रूपमें दीखनेपर भी व्यक्ति नहीं है। क्योंकि वह कोई प्राकृत व्यक्ति नहीं है। कई चीजें हम लोग व्यक्त करते हैं। एक लकड़ी है, उसे गढ़ लिया, औरत बना लिया। मर्द बना लिया। एक लकड़ीमें व्यक्ति है—यह हाथ है, यह पाँव है, यह सिर है—इसका नाम व्यक्ति होता है।

अंजु धातुसे अञ्जन शब्द बनता है—अञ्जना शब्द बनता है।

उसीमें उपसर्ग जोड़नेसे यह व्यञ्जन शब्द बनता है। व्यञ्जन होनेपर इन्द्रियोंका भोजन बन जाता है और व्यञ्जना होनेपर मनका भोजन बन जाता है। व्यञ्जना काव्यमें होती है और व्यञ्जन रसोई-घरमें होता है। एक भागवत-व्यञ्जन नामकी पुस्तक है, अभीतक प्रकाशित नहीं हुई। भागवत-व्यञ्जन माने वैष्णवोंका व्यञ्जन—भागवतके अर्थकी व्यञ्जना। **व्यञ्जनं व्यक्तिः।** व्यञ्जन माने आँखका भोजन, कानका भोजन, नाकका भोजन, मनका भोजन और यह व्यक्ति क्या है—व्यक्तिको हम भोजन देते नहीं हैं। हम भोजन देनेके बहाने उसका भोजन करते हैं। कोई आकर उपस्थित होता है—महाराज हम आपको भोग देनेके लिए उपस्थित हुए हैं। वह भोग देनेके लिए उपस्थित नहीं होता, वह भोग लेनेके लिए उपस्थित होता है। यह संसारका छल है कि हम आपको भोग देनेके लिए उपस्थित हैं। यही संसारका स्वरूप है, इसीका नाम माया है, इसीका नाम कपट है, इसीका नाम छल है। असलमें—तुम क्यों भोग देना चाहते हो? आपको भोग देनेमें हमको बड़ा सुख हो रहा है, तब तुम अपनेको सुखी करना चाहते हो? **व्यञ्जनं व्यक्तिः। न व्यज्यते केनापि प्रमाणेन इति अव्यक्तं।** भगवान्‌ने कहा मैं अव्यक्त हूँ। अव्यक्त माने आपकी जीभ, नासिका, त्वचा इन प्रमाणों द्वारा गृहीत नहीं हूँ।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥७.२४

कोई चीज प्रकृतिमें अपने आप व्यक्त हो जाती है। मिट्टीमें पत्थर अपने आप बनने लगते हैं। समुद्रकी बालूमें शंख अपने आप बनने लगते हैं। छोटे-छोटे घोंघे अपने आप बनते हैं। कीड़े पड़ जाते हैं, बना लेते हैं। कुछ प्रकृतिमें बनते हैं, कुछ कर्मसे बनते हैं। ये जो भगवान् हैं, ये कैसे बने? कर्मसे, किसी फैक्टरीमें

गढ़े गये—स्वयं प्रकृतिमें पैदा हुए—ये दोनों बात भगवान्‌के श्री-विग्रहमें नहीं है। उनका जो प्राकट्य है-विलक्षण है। वे सच्चिदा-नन्दघन हैं। **मम अनुत्तमं अव्ययं परं भावं अजानन्तः अबुद्धयः अव्यक्तं माम् व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते।** भगवान्‌का अव्यय जो परमभाव है—अनुत्तम—जिससे उत्तम और कुछ नहीं होता। उत्तमताकी अवधि 'देखी री मैंने सुन्दरताकी सीमा।' यह सीमा जो है—अनुत्तम—जिससे उत्तम और कोई न हो उसका नाम होता है अनुत्तम। इसके लिए खास तरहके सूत्र-नियम बनाने पड़ते हैं। नहीं तो अनुत्तम शब्दका अर्थ ऐसे भी तो कर सकते हैं—'जो उत्तम न हो'—ऐसा अर्थ नहीं होता। **नास्ति उत्तमो यस्मात्।** जिससे उत्तम और कोई नहीं है। माने उत्तमताकी—उत्कर्षकी अवधि। **अक्षरात् परतरः।** सबसे परे जो अक्षर है उससे भी परे। क्षरसे अलग है अक्षर और अक्षरसे भी विलक्षण है यह **अक्षरात् परतरः।** सबसे परे अक्षर है। उससे भी परे यह साक्षात् पुरुषोत्तम है। इससे बड़ा और कोई नहीं।

दूसरी बात अव्यय—अव्यय माने जो कभी घिसता नहीं। कभी जिसका व्यय नहीं होता। किसीके पास बहुत धन हो और खर्च करने लगो तो अन्तमें 'ख' हो जायगा। ख+रचना—खकी रचना हो जायगी। खात्मा, ख+तमं। ये संस्कृतके ही शब्द हैं। आपकी जो तिजोरी है, उसमें आमदनी न हो, बैंकमें आमदनी न हो तब क्या होगा? ख+रचना हो जायेगा। शून्य हो जायगा। अतिशय शून्य हो जायगा। खर्च हो जायगा। तो जिसका व्यय होता है उसका खात्मा हो जाता है। खर्च ही खर्च नहीं होना चाहिए, आना भी चाहिए। लेकिन यह तो परमात्मा ऐसा है, इसमें कहीं व्यय नामकी वस्तु है ही नहीं। व्यय माने विपरीत गमन—जैसे पैदा हुआ था वैसे मिट रहा है। पैदा होनेके विपरीत, बढ़नेके विपरीत यदि उसकी गति है, तो उसको

वोलेंगे—व्यय। परमात्मा कैसा है ? अव्यय है। परमात्माका अस्तित्व अनुत्तम है, अव्यय है और वह परम है, आत्मरूप है। हम लोग इस बातको तो जानते नहीं हैं। **अबुद्धयः**—मूर्ख हैं। सँभलकर इस शब्दका व्यवहार है। अबुद्धयःका अर्थ होता है नासमझ। मूर्ख हैं, भ्रान्त हैं ऐसे नहीं बोलते। कष्ट भूले हुए हैं—भटके हुए हैं—ऐसा नहीं, समझते नहीं, वे क्या करते हैं ?

अव्यक्तं मां व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते।

मैं कृष्णरूपमें भी, रामरूपमें भी साक्षात् अव्यक्त ब्रह्म ही हूँ। परन्तु नासमझ लोग ऐसा मानते हैं कि यह भी कोई प्रकृतिका विलास है, यह भी कोई देवता—दानी है, यह भी कोई व्यक्ति विशेष ही है। तो अव्यक्त सच्चिदानन्दघनको व्यक्तिविशेषके रूपमें मानना, यह मूर्खता है। पण्डित लोग इसमें-से कैसे अर्थ निकालते हैं इसका नमूना बताते हैं।

अव्यक्तं संतं मां अबुद्धयः व्यक्तिमापन्नम् मन्यन्ते।

मैं तो हूँ अव्यक्त, किन्तु मूर्ख लोग मुझे व्यक्ति भावको प्राप्त मानते हैं। इसीको उलट दो।

व्यक्तिमापन्नम् संतं मां अबुद्धयः अव्यक्तं मन्यन्ते।

जब मैं साक्षात् प्रकट हूँ, सच्चिदानन्दघन, मुरलीमनोहर, श्यामसुन्दर, मोरमुकुटवाला, मन्द-मन्द मुसकानवाला, वनमाली, पीताम्बरी, कुण्डली, किरीटी, जब मैं स्वयं प्रकट हूँ, मैं तो व्यक्त होकर आया तुम्हारे घरमें और तुम अव्यक्त की चिन्ता कर रहे हो ! निश्चय ही आपकी बुद्धि ठीक नहीं है।

अव्यक्तं—जो मुझे साकार मानते हैं—जो मुझे अव्यक्त मानते हैं तो दोनों गलत हैं, क्यों ? अव्यक्तको व्यक्त मानते हैं वे भी अबुद्धि हैं और व्यक्तको अव्यक्त मानते हैं, वे भी अबुद्धि हैं,

अव्यक्त और व्यक्त दोनों माननेवाले अबुद्धि हैं क्यों? मैं व्यक्तसे भी, विलक्षणसे भी अलग हूँ। अव्यक्तसे भी विलक्षण हूँ। दोनोंसे फरक है। मैं इस दुनियाके रूपमें बनानेवाली प्रकृतिसे भी विलक्षण हूँ और जो दुनियाके रूप हैं उनसे भी विलक्षण हूँ।

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।

भगवान्‌से बढ़कर दूसरा कोई नहीं है और भगवान्‌में किसी प्रकारका कोई परिवर्तन विवर्तन होता ही नहीं। वह बिलकुल एक रस, सर्वथा एक रस है। उनकी एक रसतामें किसी प्रकारकी शंका नहीं है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥२४॥

उन्होंने बुद्धि नहीं बनायी। यदि वे सत्संग करते, यदि वे शास्त्रका श्रवण, मनन करते तो ऐसे अबुद्धि न होते। उनका तो संग बिगड़ गया। वे दुनियाके बारेमें तो सुनते हैं परन्तु परमेश्वरके बारेमें नहीं सुनते। **अबुद्धयः**—बुद्धि सम्पादनका उन्होंने प्रयास नहीं किया। कृतबुद्धि नहीं हुए। **अजानन्तः**। क्योंकि उन्होंने सत्संग नहीं किया। स्वशास्त्रका स्वाध्याय नहीं किया। कभी अन्तर्मुख होकर विचार नहीं किया। कभी ध्यान करनेकी कोशिश नहीं की। इसलिए वे ईश्वरके स्वरूपके बारेमें गड़बड़ा जाते हैं।

अच्छा महाराज, आप स्वयं ही क्यों नहीं प्रकट होते? सबके सामने आकर ललकार दो कि देखो, मैं यह ईश्वर हूँ। सब लोग कैसे भटकेंगे? कैसे भ्रान्त होंगे? भ्रान्तिमें भ्रम है। भ्रम माने भ्रमण। भ्रमण करनेके लिए आप निकलते हैं न! उसमें क्या विशेषता होती है। जाते हैं—आते हैं—जाना-आना दोनों होता है भ्रमण। **भ्रमणे भ्रमः**—यही जो कभी आगे जाना, कभी पीछे

जाना, कभी बाँयें जाना, कभी दाहिने जाना। यह जो अपनी बुद्धिका भटकना है, यही भ्रम है। निष्ठावती बुद्धि नहीं है। बुद्धिका दोष देखो—सोती हैं किसीके साथ और खाने जाती है किसीके घर। बुद्धिका शयन कहाँ होता? आत्माके साथ। किसीकी भी बुद्धि हो सोते समय, आकर अपने आत्माके पलंगपर, अन्तःकरणके पलंगपर और अपने साक्षी, द्रष्टा, स्वप्रकाश परमानन्दघन आत्माके साथ शयन करती है। बुद्धि सोनेमें दूसरेका साथ नहीं देती। जब सोयेगी तो अपने आत्माके पास सोयेगी। परमात्माके पास सोयेगी। और जब इसको घास चरना होता है तो दूसरेके खेतमें चर आती है। गाँवमें ऐसा होता है—लोग अपनी गायको, बैलको, बकरीको रातको छोड़ देते हैं—वह रातमें चुपकेसे दूसरेके खेतमें, खलिहानमें चरकर रात रहते ही लौटकर आजाती है अपने खूँटेपर। यह हमारी बुद्धि शयनके समय तो अपने खूँटेपर रहती है—पतिके साथ, परमपतिके साथ, भगवान्‌के साथ रहती है। परन्तु जब खाने पीनेका समय आता है तो घास चरनेके लिए—ग्रास चरनेके लिए—जाती है। अभ्युदयः अजानन्तः। भगवान् सामने खड़े होकर ललकार दें। ऐ बुद्धि! कहाँ जाती है? बोले कि—नहीं। हम एक खेल खेलते हैं—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

भगवान्‌ने कहा—मैं सबके सामने नहीं आता। सबके सामने अपनेको प्रकाशित नहीं करता—नाहं प्रकाशः सर्वस्य। व्यवस्था ही बिगड़ जाती है। भगवान् स्वयं किसको मिलें और किसको न मिलें। उनके लिए तो सब एक सरीखे हैं। मिले तो सबको

मिलें और न मिलें तो किसीको न मिलें। यदि सबको मिलेंगे तो सबमें खो जायेंगे। संसारका लोप हो जायेगा और यदि किसीको नहीं मिलेंगे तो भगवान् हैं, यह अनुभव किसीको नहीं होगा। यह दोनों पक्ष गलत है। भगवान् किसीको नहीं मिलते, यह पक्ष भी गलत है। भगवान् सबको मिलते हैं, यह पक्ष भी गलत है। इसके लिए एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि किसीको मिलें और किसीको न मिलें। भगवान्ने इस व्यवस्थाका भी वर्णन किया है।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। १०.१०

भगवान् कहते हैं—पहले उनको बुद्धियोग देता हूँ—किनको जो अपना चित्त मुझमें लगाते हैं। जो मेरे लिए जीने लगते हैं। जैसे संसारके लोग खानेको मिले तो जिन्दा रहें और खानेको न मिले तो जिन्दा न रहें। वैसे जो भगवद्गतःप्राण हैं—भगवान्का स्मरण हो, ध्यान हो, भगवान् मिले तो जिन्दा रहें। गांधीजी कहते थे कि राम-नाम तो हमारी खुराक है। हमारा भोजन है। उसके बिना तो हम जिन्दा ही नहीं रह सकते।

एक बार 'कल्याण' कार्यालयमें एक सज्जन थे। दादा उनका नाम था। उनको स्वप्न आया कि गांधीजीका जीवन अब बहुत थोड़ा बाकी रह गया है, अब उन्हें भगवान्का भजन करना चाहिए। तो हनुमान प्रसादजीने गांधीजीको स्वप्न लिखा कि ऐसा स्वप्न कृष्णदासको आया है, अब आपको भगवद्-भजन करना चाहिए। गांधीजीने उसके उत्तरमें पत्र लिखा था उन्होंने कहा—एक तो यह बात तुम्हारी नहीं जँची कि हमको मृत्युके डरसे भगवान्का भजन करना चाहिए। हमको मृत्युसे कोई डर नहीं है। रही बात राम-नामके भजनकी! सो तो मेरी खुराक है। इसके बिना मैं रह ही नहीं सकता। भगवान्का नाम तो मेरी साँस-साँसमें है।

मच्चित्तः मद्गतः प्राणाः। हमारा प्राण भगवान्‌के भजनका भोजन करे। भगवान्‌की चर्चा ही करते रहना चाहिए। जैसे आप बोलते हैं, आज मौसम बहुत ठण्डा है, आज गरम है, आज धूप है—दोनों देख रहे हैं—आज मौसम ठण्डा है, गरम है, फिर भी बातचीत करनेके लिए वहींसे शुरू करते हैं। आप भगवान्‌की चर्चा शुरू कर दीजिये। कोई बादल देखता है, कोई इन्द्रदेवताको देखता है—आप भगवान्‌को देखिये। आज भगवान्‌ने बादल भेज दिये हैं। आज भगवान् प्रेमरसकी वर्षा कर रहे हैं। अपनी दृष्टिको धरतीके पानी तक मत रहने दीजिये। केवल बादलतक मत रहने दीजिये। अपनी दृष्टिको इन्द्रदेवतातक मत रहने दीजिये। ईश्वरतक अपनी दृष्टिको जाने दीजिये।

किसी भी घटनाके मूलमें परमेश्वरके हाथ हैं। उन्हींको एक दूसरेसे श्रोता मिलनेपर कथा सुनाइये। आपका तोश कहाँ है? भोग मिलनेमें है, रिश्तेदार, नातेदार मिलनेमें है—धन मिलनेमें है? बोलें नहीं, भगवान्‌के स्मरणमें सन्तोषका अनुभव कीजिये और रम जाइये उसमें। रमन्ति च चरमन्ति च। चरमवृत्तिका अनुभव कीजिये उसमें। तब भगवान् आपको मुक्ति देंगे और ज्ञानका मसाल लेकर आपको दिखावेंगे और यह देखो आप भगवान्‌के पास पहुँच रहे हैं। यही भगवान्‌के पास पहुँचनेकी रीति है। अब प्रश्न यह हुआ कि भगवान् सबको मिलें या सबको न मिलें—बोले यह नियम नहीं चल सकता। जो भगवान्‌की ओर मुँह करके खड़ा होगा, उसको भगवद्-दर्शन होगा। जो भगवान्‌की ओर पीठ करके खड़ा होगा, उसको भगवान्‌का दर्शन नहीं होगा। आप किस किनारेपर हैं? कूल होता है न! कूल माने किनारा—नदीकूल, गंगाकूल, जैसे बोलते हैं अनुकूल। अनुकूल माने—जिस किनारेपर भगवान् खड़े हैं, उसी किनारे पर आप

हैं और जिस किनारेपर भगवान् हैं—आप उसके उलटे किनारे पर। भगवान् कह रहे हैं—आज बादल होंगे, आज वर्षा होगी—बोले नहीं-नहीं आज वर्षा मत करना—तो प्रतिकूल किनारेपर बैठे। जो होता जाय उसको हाँ करते जाओ और जो होनेवाला हो उसमें सावधान रहो।

भगवान् जो करते हैं उसमें हमारा मंगल है। तो जो उनके किये हुए मंगलपर दृष्टि रखता है, उसे परमात्माकी प्राप्ति होती है और जो उनकी ओर पीठ करके, उलटा होकर, वे करते हैं कुछ और हम सोचते हैं कुछ तो उनको परमात्माका दर्शन नहीं होगा। वह कभी कहेगा हमारे दुश्मनने किया है। कभी कहेगा हमारे दोस्तने किया है। कभी कहेगा हमारे रिश्तेदारने किया है। अरे मालिकने किया है। बहुत होंगे तो कहेंगे भाई! अब प्रकृतिपर हमारा क्या वश है? उनको परमात्माका दर्शन नहीं होगा। ये परमात्मा छिपकर क्यों रहते हैं?

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

योगाय या माया सा योगमाया। तथा योगमायया समावृतः। ये जो संसारके जीव हैं ये मेरी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करें। मुझे समझनेके लिए यत्न करें। साधन करें। यह हमारा खेल है। **योगाय, संयोगाय भगवत्प्राप्तये या माया सा योगमाया।** भगवान् सब जगह हैं बल्कि सब जगह भगवान्में हैं। भगवान् सब कालमें हैं—बल्कि सब काल भगवान्में हैं। भगवान् सब वस्तुओंमें हैं—नहीं, सब वस्तुएँ भगवान्में हैं। तब वह गुप्त क्यों हैं? वे छिपे हुए क्यों हैं? **योगमाया समावृतः।** कहते हैं कि आप उनकी प्राप्तिके लिए कुछ साधना करें। वे चाहते हैं—उनकी प्राप्तिके लिए आपके प्रेमको, आपकी उत्कण्ठाको, आपकी उत्सुकताको, आपकी व्याकुलताको, आपके प्रयासको देखकर वे प्रसन्न हों। ये मेरी प्राप्तिके लिए

कितना उत्सुक है, उत्कण्ठित है, आकुल है, व्याकुल है—आपकी लालसा देखकर, अभिलाषा देखकर वे आनन्दित हो रहे हैं।

योगमाया समावृतः। उन्होंने अपनेको ढँका, क्योंकि योगके लिए एक माया रच दी। जैसे यहाँ नहीं हों। बच्चा खेल खिलौनेमें लग गया, माँ किवाड़की आड़में खड़ी हो गयी। माँ! माँ! माँ!!! जब माँके लिए बच्चा रोया तो बोली देखो न! अभी है तो छोटा-सा बच्चा, पर मुझसे कितना प्रेम है। मेरे बिना इसको खिलौने भी अच्छे नहीं लगते। यह तो बच्चेकी स्थिति है।

एक बालक है, मानता ही नहीं है। खेल खिलौना छोड़ता ही नहीं है, वह अपनी माँके पास जाता ही नहीं है—तो माँने आड़में-से ऐसी आवाज की जैसे भेड़ियेकी आवाज हो, जैसे बन्दरकी आवाज हो। अब बच्चा डर गया। डरके अपनी माँकी ओर भागा। इस संसारमें भगवान्‌की योगमाया है। कहीं डराकर, कभी छिपकर जीवोंको अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। इस योगमायासे ही भगवान् समावृत हैं—ढके हैं।

यह आवाज, डरावनी आवाज किसकी है? छिपकर भगवान् कहाँ गया? छिपकर भगवान् कहीं गया नहीं है और यह डरावनी आवाज भी किसी दूसरेकी नहीं है। यह मूर्खता है मनकी। यह मूढ़ता है। परमात्मा छिपे हुए हैं, अभी हैं। परन्तु जो लोग—संस्कृतमें लोक बोलते हैं पर हिन्दीमें लोग है। ये संसारके लोग मूढ हो गये हैं। माने मुझे पहचानते नहीं हैं। दूसरी दूसरी चीजें देख रहे हैं। नाभिजानाति। अभिज्ञानका अर्थ है पहचानना। अभिज्ञाते साहचर्या। शांडिल्यका सूत्र है कि जब अभि उपसर्गका प्रयोग होता है—उसका अर्थ होता है अभिज्ञप्ति। अभिज्ञप्ति माने पहचान है। तो वह सामने लेकिन हम उसे पहचानते नहीं हैं। यह हमको देखता है, बोलता है, छूता है हजारोंरूपोंमें।

एक हमारा बचपनमें मित्र था। मैं था १५-१६ वर्षका। वह था १०-११ वर्षका। हम दोनों तीन दिन साथ रहे और हमारी मित्रता बहुत बढ़ गयी। फिर जबतक मिलना नहीं हुआ तबतक वह एम. ए.में पहुँच गया। चिट्ठी हम लिखते वह लिखता। एक दिन प्रयागमें उसके होस्टलमें गया। मैं जाकर कुशल-मंगल पूछने लगा। घरकी बात पूछने लगा। पढ़ाईकी बात पूछने लगा। वह तो हमें पहचाने नहीं। ८-१० वर्ष हो गये थे। मैंने कहा मैं स्नान करूँगा और यहीं रहूँगा। वह काम तो सब करे पर पहचाने नहीं। तीन घण्टे बाद मैंने उसे अपना परिचय दिया। अरे वह तो लिपट गया हमारे साथ! अब देखो ३-४ घण्टेसे वह हमको देख रहा था पर पहचाना नहीं। देखना दूसरी चीज है और पहचानना दूसरी चीज है। उस पहचानको ही अभिज्ञान बोलते हैं।

जब ब्रह्मभूत हुआ तभीसे देखने लगा, परन्तु जब भक्ति हुई तब भगवान्का अभिज्ञान हुआ। यह 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्'में अभिज्ञान शब्द पहचानके ही अर्थमें है। वह अंगूठी खो गयी थी तो पहचान मिट गयी थी। शकुन्तला तो वही थी। पर पहचान दुर्वासाके शापके कारण अथवा ऐसा कोई-कोई बताते हैं कि पहचानकी जो अंगूठी थी वह किसी कारणसे खो गयी थी। तो ईश्वर कहीं गया नहीं है। ईश्वर तो योगमायाका गिलाफ ओढ़कर यहीं खड़ा है। जो हमारी पहचाननेवाली बुद्धि है वह मिट गयी है।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।

यह शरीरवाला दीखता है पर अजन्मा है। यह शरीरधारी तो है परन्तु यह मिटनेवाला नहीं है। यह अजर है, अमर है—यह

अमृत है। लोग परमात्माको पहचानते नहीं हैं। उसने एक पर्दा बना लिया है। जैसे नट अपना वेष बदल लेता है। वैसे ही अपना वेष बदल करके संसारके रूपमें दीख रहा है। हमको पुरुष दीखता है, ईश्वर नहीं। हमको मिट्टी, पानी, आग दीखता है, ईश्वर नहीं। खूब सयाना है—अनजाना होकर बैठा है। वह कौन, यह कौन, मैं कौन—वस्तु तो एक ही है। एक चीज परमात्मा, उसने ऐसा रूप धारण क्यों किया—इसलिए कि जब हम उसकी प्राप्तिके लिए उत्सुक होंगे तो हमको वह मिलेगा। न तो सबको मिलेगा, और न तो किसीको नहीं मिलेगा। सबको मिलेगा तो संसार-का दोष और यदि किसीको नहीं मिले तो ईश्वरका दोष। अनुभवका विषय तो होना ही चाहिए। यदि कभी किसीको ईश्वर अनुभवका विषय ही नहीं होगा तो ईश्वर है इसके लिए संसारमें कोई प्रमाण नहीं रह जायगा।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥७.२५२-६

दृश्यतां दृश्यतां—यह मोहलीला देखिये, देखिये! भगवान् हमको अपनी गोदमें रख रहे हैं। भगवान् हमें अपनी आँखोंसे कभी ओझल करते नहीं। भगवान् अपनी गोदसे हमें कभी उतारते नहीं। भगवान् हमको जीवन देते हैं। ज्ञान देते हैं। आनन्द देते हैं। सब कुछ भगवान्‌की ओरसे हमें प्राप्त हो रहा है। भगवान् आदि, अन्त सब जानते हैं। जो बीत गया उसको भी जानते हैं। जो आगे आयेगा उसको भी जानते हैं। जो वर्तमान है उसको भी जानते हैं। अतीतको, वर्तमानको, भविष्यको सबको भगवान् जानते हैं। असलमें कालभेद जीवकी दृष्टिसे होता है। ईश्वरकी दृष्टिसे होता ही नहीं

है। जब हम एक जगह, यह क्षण—इस क्षणसे अगला क्षण नापनेकी सोचेंगे तबतक वर्तमान क्षण भी भूत हो जायेगा। भविष्यको नापना चाहोगे तब भी वर्तमान भूत हो जायेगा। भूतको नापना चाहोगे तब भी वर्तमान भूत हो जायेगा। भूत और भविष्यकी सन्धि कहाँ है ? जहाँ वर्तमान रहता है। कालपर दृष्टि डालो, विचार करो, यदि आप भूत और भविष्यकी सन्धि कहीं निकाल सको तो वर्तमानमें चले गये। भूत अनादि है, भविष्य अनन्त है—अनादि और अनन्तकी कहीं सन्धि होती ही नहीं। परमात्मा अपनेको ही भूत-भविष्य और वर्तमानके रूपमें जानता है। वह सबको जानता है। सब उसकी आँखोंकी पुतलीमें बसे हैं। सब उसके हृदयके अन्दर बसे हैं। वही अधिष्ठान है, वही प्रकाशक है। वही सबके रूपमें स्फुरित हो रहा है। परन्तु स्फुरित होनेवाले लोग उसको नहीं देख पाते।

एक चीज हमारे बहुत पास है पर हम उसको देख नहीं पाते। हमारी आँख आप सबको देखती है। आँखमें पुतली है वह सब आकारोंको देखती है। लम्बे-चौड़े सबको देखती है। परन्तु ये आकार हमारी आँखको नहीं देख पाते। हमारे नेत्रेन्द्रिय तो सब रूप देख सकते हैं। परन्तु रूप आँखको नहीं देख पाता।

जैसे आकृतियोंके परे आँख है पर ये आकार आँखको नहीं देख सकते। इसी प्रकार परमात्मा—वह सबको अपने आपमें तौलता है। सबकी लम्बाई, चौड़ाई भी देख रहा है। मेरे सिवाय न इनका वजन है, न मेरे सिवाय इनकी शकल-सूरत है—न मेरे सिवाय इनकी उमर है। अपने रूपमें परमात्मा सबको देख रहा है। पर सब परमात्माको नहीं देख सकते। यह रहा परमात्मा। जब परमात्मा सब है तो उसे देख क्यों नहीं पाते ? अनेक रूपमें परमात्मा है। परमात्मा कहाँ है ? देखो यहीं है—

गति भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृद्।

गति, भर्ता प्रभु तीन हो गये। साक्षी, निवास, शरण छः हो गये। सहृद्, प्रभव, प्रलय ये नव हो गये। स्थान, निधान, अव्यय-बीज बारह हो गये। एक श्लोकमें परमात्माका बारह रूपमें वर्णन किया हुआ है। यही—है परमात्मा परन्तु साधारण पुरुष यह नहीं जानते हैं और कोई कोई मुझे तत्त्वतः जानते हैं।

तत्त्वसे परमात्माका ज्ञान होता है। पहचान होती है। आखिर इसका कारण क्या है? हम क्यों नहीं पहचानते? परमात्मा दीखता क्यों नहीं है? क्योंकि वह आपसे साधन करवाना चाहता है। आप उसका नाम लेकर पुकारो, आप उसके लिए रोओ, आप उसके लिए उसका ध्यान करो, वह आपका प्रेम देखकर, आपके प्रेमका भोग करके वह सुखी होगा, प्रसन्न होगा। आनन्दित होगा। उसके आनन्द और बढ़ जायेंगे। और हम क्यों नहीं देख पाते हैं?

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥२७॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।३०।

अब परमात्माको देख क्यों नहीं रहे हैं? मूढ़ क्यों हो गये? परमात्माने साधन करवानेके लिए, हमारा प्यार देखनेके लिए उत्सुकता दिखायी। एक बार बच्चे आँखमिचौनी खेलने लगे। ढूँढते-ढूँढते खाने-पीनेकी मिठाई मिल गयी, फल मिल गया—तो

कुछ बच्चे खाने-पीनेमें लग गये। कुछ लोगोंने देखा, यह काम बहुत जरूरी है, उसको करने लग गये। कुछ लोग ढूँढते-ढूँढते थक गये तो बोले कि हमने देख लिया ! क्या देख लिया ? भगवान् बड़े भोले हैं बोले भाई, इन्होंने देख लिया तो इनसे छिपनेकी क्या जरूरत है ? कुछ लोग थे उन्होंने रोना शुरू कर दिया—भाई, हम ढूँढते-ढूँढते थक गये। तुम हमें ढूँढनेसे नहीं मिलते हो। अब हमारा आँखमिचौनीका खेल कबतक चलेगा ? जब रोने लगे तो जो छिपा हुआ बालक था वह अपने आप ही बीचमें आगया। जो देख लिया, देख लिया बोलते हैं, वे बोलते तो बिना देखे ही हैं। लेकिन देख लिया, देख लिया—उनकी यह बात पूरी करने भगवान् उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। हम फँसे कहाँ ? मोहमें फँसे कि कर्ममें फँसे कि सम्बन्धमें फँसे। एक तो है इच्छा—हमको यह चाहिए यह चाहिए—यह चाहिए और एक है द्वेष—हमको यह न मिले, यह न मिले, यह न मिले। बस, यही द्वन्द्वका मोह है। द्वन्द्व माने दो दो—द्वौ-द्वौ इति द्वन्द्वः—राग-द्वेष एक द्वन्द्व है। सुख-दुःख एक द्वन्द्व है। स्वर्ग-नरक एक द्वन्द्व है। जन्म-मरण एक द्वन्द्व है। जो दो दो चीज एक साथ रहती हैं उनको बोलते हैं द्वन्द्व। इच्छा-द्वेषका द्वन्द्व है। हम ईश्वरकी ओर देखते ही कहाँ है ? हम तो कहते हैं—हमको यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए ! दुनियाको हम जानते हैं, हम चाहते हैं, उसके लिए काम करते हैं। हम अपने दुश्मनको जानते हैं, उससे द्वेष करते हैं और इस द्वन्द्वके मोहमें ऐसे फँस गये कि जो अपने अन्दर, अपनी आत्मामें परमात्मा है उसकी ओर नहीं देख पाते। हम सम्मोहमें पड़ गये ! मूढ़ हो गये !!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

●

प्रवचन : ९

सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप।

जब सर्वभूत-प्राणियोंकी सृष्टि होती है तब यह खेल प्रारम्भ हो जाता है। वह खेल क्या है? किसीकी इच्छा होती है कि यह मिले, किसीसे द्वेष होता है कि यह न मिले। यह इच्छा-द्वेषका चक्र—सर्गके प्रारम्भमें ही होने लगता है। एक अद्भुत बात है—बालक पैदा होता है। उसके मनमें दूध पीनेकी इच्छा आजाती

है। पशुके भी, मनुष्यके भी। हमने देखा, पशुओंके बच्चोंको माताओंके स्तनके पास मुँह कीजिये तो अपने आप वे पकड़कर दूध पीने लगते हैं। कुत्तियाँ लेट जाती हैं और उसके बच्चे जिनकी आँख अभी तक खुली नहीं है—अपना मुँह इधर-उधर घुमाकर स्तन पकड़ लेते हैं और दूध पीना शुरू कर देती हैं। उनको कोई रास्ता दिखानेवाला नहीं रहता। कोई पिलानेवाला नहीं होता है। उनके भीतर एक प्यास जन्मसे ही होती है।

बच्चा पैदा होता है, यदि न रोवे तो माताएँ उसे रुलाती हैं। चिकोटी काटती हैं और वह रोना शुरू कर देता है। माने चिकोटी काटना उसे पसन्द नहीं है। उससे द्वेष है। चिकोटीसे द्वेष है और दूधसे उसका राग है। इसका कारण क्या है? इसका कारण बताते हैं कि सृष्टिका चक्र ही ऐसा चल रहा है। पूर्व-पूर्व जन्मकी वासना जीवके साथ रहती है। प्रकृतिमें प्यास और तृप्तिका चक्र चलता रहता है। माँ-बापके संस्कार बच्चेमें आते हैं। इससे किसी वस्तुकी इच्छा होती है और किसीसे द्वेष होता है। यही है संसारका द्वन्द्व।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

सृष्टिमें बन्धन क्या है? अब द्वेषको भी कम कर दो। केवल इच्छा, पानेकी इच्छा और प्रिय पानेकी इच्छा। हमको यह चाहिए, यह भी इच्छा है और हमको यह नहीं चाहिए, यह भी एक इच्छा है। इच्छा ही चाहती है और इच्छा ही नहीं चाहती। इसीसे यह सब द्वन्द्व चलता है। हमारे चाचा बचपनमें हमको

गुड़ दिखाते थे। हम लेनेके लिए उनकी ओर जाते तो वे हाथ ऊपर उठा देते। एक बार, दो बार हम लपकते और वे नहीं देते तो हम फिर कहते—'हमको चाहिए ही नहीं।' अब चाहिए नहीं पर सारा झगड़ा खत्म हो जाता। वे फिर लाकर दे देते थे।

हम इच्छाके बन्धनसे वँधे हुए हैं। संसारमें हम जिस वस्तुको चाहते हैं, उससे छूटनेमें कष्ट होता है। क्या वह चीज हमें रस्सीसे बाँधती है? जंजीरसे बाँधती है? कोई उसमें चुम्बक है? नहीं, हमारी इच्छा ही उन-उन चीजोंके साथ लटकती है और इच्छा पूरी हो जावे तो थोड़ी देरके लिए तृप्ति होती है और इच्छा न पूरी हो तो और प्यास लगती है और तकलीफ होती है। इच्छाका नाम है बन्धन और इच्छाकी निवृत्तिका नाम है मोक्ष। दो शब्द हैं सीधे-सीधे। **वासना एव संसारः**। वासनाका नाम संसार है। यदि वासना मिट गयी तो संसारका कोई बन्धन नहीं रहा। बाहरकी चीज नहीं बाँधती है, भीतरकी चीज बाँधती है। ये हैं इच्छा और द्वेष।

हम ईश्वरको चाहते हैं या संसारको? जानेवाली चीज, मरनेवाली चीज, बेवफा—बहुत बार तो हम ऐसी चीजोंको चाहते हैं जो हमें पहचानती ही नहीं। जैसे चाँदी है, सोना है, हीरा है, मोती है। ये जड़ पदार्थ हमें पहचानते ही नहीं कि यह हमको चाहनेवाला है। यह हमको पाकर खुश होता है या यह हमारा मालिक बनकर अभिमान करता है। ऐसी चीजोंको हम चाहते हैं जो हमें जानती ही नहीं हैं कि हम उनको चाहनेवाले हैं, उनके प्रेमी हैं, उनके इच्छुक हैं, उनके अभिलाषी हैं। परन्तु हमारी चाह, इच्छा ही हमें उनके साथ बाँधकर रखती है। आपको कभी तकलीफ हो तो आप निगाह कर लें कि ऐसी क्या चीज है जिसको मैं छोड़ना नहीं चाहता हूँ, और मुझे तकलीफ

हो रही है। आप कुछ-न-कुछ पकड़े रहना चाहते हैं जिससे तकलीफ हो रही है। द्वेष तो हम दूसरे प्राणियोंसे करते हैं। भक्ति-सिद्धान्तमें ऐसा कहते हैं—प्रधानतया भागवत-सिद्धान्तमें, कि परमात्मा सबमें है और सब परमात्मा है। सबसे परे, परमात्मा है, सबका साक्षी परमात्मा है और परमात्माको प्राप्त कर लो तो परमात्माके सिवाय और कोई दूसरी वस्तु नहीं है। भगवान् विश्व है। भगवान् विश्वका कारण है। भगवान् विश्वमें व्याप्त है। भगवान् विश्वसे अतीत है। भगवान् सर्वसाक्षी है। भगवान् कोई दूसरी वस्तु नहीं हैं।

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।

—श्रीमद्भा० ३.२९.२१

मैं सम्पूर्ण वस्तुओं और प्राणियोंमें उन-उन वस्तुओं और प्राणियोंकी आत्माके रूपमें, उनके मैं के साथ एक उत्स, एक उद्‌गम, एक अधिष्ठान, एक प्रकाश सबके अन्दर 'मैं' बैठा हूँ। मेरे उस स्वरूपका तो मनुष्य परित्याग कर देता है। वह उसका अनादरकर मेरी पूजाका ढोंग रचता है। मेरी पूजाकी विडम्बना करता है।

तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्।

जो संसारके किसी प्राणीका तिरस्कार करता है, वह चाहे हजारों मन अन्नका भोग लगावे और हजारों-लाखों-करोड़ों रुपयेसे हमारी पूजा करे मैं उसकी पूजासे सन्तुष्ट नहीं होता।

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः॥
द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।

—श्रीमद्भा० ३.२९,२२

भगवान् कहते हैं तुम्हारी आत्माके रूपमें मैं हूँ और जिससे तुम द्वेष करते हो, जिसको देखकर तुम्हारे दिलमें जलन आती है, उसकी आत्मा भी मैं हूँ। अपने पेटको बीचमें रखकर तुम अपनी आत्मासे तो प्रेम करते हो और दूसरी आत्मासे द्वेष करते हो, परन्तु वह मैं ही हूँ। दूसरा कोई नहीं है। तुम मुझसे द्वेष करते हो। जब किसीसे द्वेष करते हो, तब तुम मुझसे द्वेष करते हो। **द्विषतः परकाये मां**—दूसरे शरीरमें मुझसे द्वेष करते हो। **मानिनः**—अपने शरीरका अभिमान करते हो। **भिन्नदर्शिनः**—दूसरी आत्माको अपनेसे भिन्न समझते हैं। आप देखो—आपके हृदयमें द्वेषकी आग जली हो तो पहले आपको जलायेगी, पीछे दूसरेके ऊपर उसकी चिनगारी पड़ेगी।

भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति।

जो संसारके किसी भी प्राणीके प्रति वैर बाँधकर अपने हृदयमें रखता है, उसको शान्ति कभी नहीं मिल सकती। जिसके मनमें दूसरेके प्रति दुर्भाव है, द्वेष है, वैर है उसे कभी शान्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए भगवान्‌की पूजा कैसे करना?

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेत् दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा॥

—श्रीमद्भा० ३.२९,२७

भागवतसे तीसरे स्कन्दमें कपिलदेवजी माता देवहूतिसे कह रहे हैं—मेरा मन्दिर कहाँ ढूँढते हो। यह सम्पूर्ण प्राणियोंका जो शरीर है, यह मेरा आलय है, देवालय है, मेरा मन्दिर है, मेरा निवासस्थान है। इसलिए चाहे पशु हो, पक्षी हो—उसे मेरा मन्दिर समझो—मेरा निवासस्थान समझो और उसकी पूजा करो। पूजा कैसे करें?

अर्हयेत् दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा।

इसे कुछ दो, दान करो, मान दो, उसे सम्मान दो, उसके प्रति मैत्रीका, स्नेहका भाव रखो। अपनी आत्माको और उसकी आत्माको अलग-अलग मत समझो। भगवान्‌की सबसे बढ़िया सबसे बड़ी पूजा यही है।

जब हमारे मनमें इच्छाएँ और द्वेष आते हैं—ये पूर्व-पूर्व जन्मके संस्कारसे आते हैं, माता-पिता, दादा-परदादा, नाना-नानीके संस्कारसे भी आते हैं और गर्भमें जो माता खाती-पीती है, जैसा सोचती है—पिता-माताके मनमें जैसा भाव होता है, गर्भाधानके समय—उससे भी संस्कार आता है। इसी प्रकार गर्भमें बालकके रहनेपर माता जैसा सोचती है, उसका भी संस्कार आता है। बालक जैसा दूध पीता है, जिसकी गोदमें खेलता है, जिसको देखता है, उसका भी संस्कार आता है। यह सृष्टिका स्वभाव ही है। इससे मनुष्यके मनमें रागद्वेषका उदय होता है। द्वन्द्व होता है। उस द्वन्द्वमें मनुष्य इतना मोह कर बैठता है, इतना फँस जाता है कि सच्चाईको समझनेके लिए उसके मनमें कोई प्रवृत्ति ही नहीं होती। वह सत्यसे मुकर जाता है। जो अपनी पसन्दकी चीजोंको सटानेमें लग गया और नापसन्दकी चीजोंको हटानेमें लग गया वह उनमें बँध गया। जो सटाने-हटानेमें लग गया, वह भीतर कौन बैठा है, हृदयके झरोखेसे कौन झाँक रहा है, उस आत्माको—परमात्माको भूल जाता है। इसलिए जब मनुष्य पुण्य कर्म करता है, उसके पाप अन्तको पहुँचते हैं तो वे लोग द्वन्द्वके मोहसे छूटकर दृढ़व्रत होकर भगवान्‌का भजन करते हैं।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

भजन प्रारम्भ करते हैं, छूट जाता है। चार दिन करते हैं, फिर छूट जाता है। समयका नियम टूट जाय, कोई बात नहीं—स्थानका नियम टूट जाय, कोई बात नहीं—परन्तु जो व्रत अपने जीवनमें ग्रहण करें, उस व्रतका पालन करें। समयका लोप हो जाय, स्थानका लोप हो जाय, परन्तु कर्मका लोप न होने पावे। भगवान्‌का नाम-जप, भगवान्‌का भजन दृढ़ताके साथ करना चाहिए। व्रतमें दृढ़ता होनी चाहिए। भगवान् कहते हैं—दृढ़-निश्चय होकर हमारा भजन करना चाहिए। जब भजनमें रम जाओगे तो क्या-क्या हमारे साथ सटे और क्या हटे इसका ख्याल छूट जायेगा।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

देखो शरीरके पीछे परिवर्तन लगा है। क्षण-क्षण छीज रहा है। वैसे कण-कण भी छीज रहा है। क्षण और कण असलमें दो चीज नहीं है। प्रत्येक कण अपने क्षणमें पैदा होता है, अपने क्षणमें दीखता है, अपने क्षणमें बदल जाता है। ये संसारके कण और क्षण जुदा-जुदा नहीं हैं। यह भी एक मोह ही है।

श्रीमद्भागवतका कहना है कि यह दीपकी लौ क्या वही है जो घण्टेभर पहले जल रही थी? जो यह झरनेमें पानी बह रहा है, यह वही है जो कल बह रहा था? क्या यह वही पुरुष है जिसको मैंने कल देखा? नहीं ऐसा नहीं है। यह वचन भी मृषा है—झूठ है, ऐसा सोचना भी झूठ है और यह है क्यों? इसलिए कि मनुष्य झूठमें ही अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

झूठ ही लेना, झूठ ही देना, झूठ ही भोजन, झूठ चबेना।

वेद भगवान् कहते हैं, यह मनुष्य कैसा अपना जीवन व्यतीत

कर रहा है ? जिसने इस सृष्टिको पैदा किया, उसको आप नहीं जानते हैं। **अन्यत् युष्माकं अन्तरं बभूव**। आपके और परमेश्वरके बीचमें कोई दूसरी चीज, भेद, बुद्धिभेद, भ्रम आगया है। आपकी आँखें कुहासेसे आच्छन्न हो रही हैं। बातचीत करनेमें आप बड़े निपुण हैं, इन्द्रियोंके भोगमें लगे हुए हैं।

यह मनुष्यकी स्थिति है देखिये—यह जरा=बुढ़ापा सिरपर सवार है। पैदा होते हैं उसी क्षणसे—वह क्षण, कण और मनको पकानेमें लगा हुआ है। मृत्यु सामने है। इस सत्यको देखते नहीं। इनसे मुक्ति पानेका उपाय क्या है ? भगवान्‌का आश्रय लो और प्रयत्न करो। गीता पौरुषका ग्रन्थ है। यह नहीं कि भगवान्‌के मनमें आयेगा तो किसी दिन आकर आपसे मिल जायेंगे। ऐसे नहीं सोचना चाहिए—'हमको ईश्वरसे मिलनेकी कोई गरज नहीं है। ईश्वरको गरज होगी तो वह हमसे मिलने आयेगा। उसको गरज भी होगी किसीसे मिलनेकी तो उसमें कोई विशेषता तो होगी न!' **यतन्ति ये**—जो ईश्वरसे मिलनेका प्रयत्न करते हैं। उनसे ईश्वर मिलता है। बोले—'अपने बलसे तो नहीं मिल सकता'—तो **माम् आश्रित्य**। उसीका आश्रय हो। उसीकी शरण ग्रहण करो और उसकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करो। सच पूछो तो ईश्वरका मिलना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है—वह तो मिला-मिलाया है। महत्त्वपूर्ण है, ईश्वरकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न, ईश्वरका मिलना उतना कीमती नहीं है, जितना हमारे जीवनमें ईश्वरकी प्राप्तिके लिए प्रयत्नका होना है और जो प्रयत्न करते हैं वे—

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

प्रयत्न—भगवान्‌का आश्रय लो। हम वस्तु-वर्गका आश्रय

लेते हैं। हम हीरा-मोती, सोना-चाँदी भगवान्‌को अर्पित करेंगे और उसके बलपर भगवान् मिल जायेंगे। वस्तुका बल या कोई मददगार हो—भगवान्‌को हमें मिला दे। भगवान्‌का कोई कान पकड़े और कहे चलो मिला दें—ऐसा नहीं है। एक विश्वासकी, भरोसेकी बात अलग है। ईश्वर जहाँ प्राप्त होता है, वह अपने सूक्ष्मतर अन्तरका एक दिव्य प्रदेश है। हमारे हृदयमें ही भगवत्प्राप्ति होती है। वहाँ न बाहरका रुपया-पैसा जाता है, न बाहरकी ठूँसी हुई विद्या-बुद्धि जाती है। अन्तरमें ही परमात्माकी प्राप्ति होती है। अतः उस भीतरवाले-का सहारा लेना। बाहर-वाले-का सहारा नहीं लेना।

माम् आश्रित्य—मामेकं शरणं व्रज। एक बार मेरी शरणमें आजाओ। **अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।** भगवान् कहते हैं—'सब धर्मोंका परित्याग कर दो। अपने साधन-का भी बल मत रखो।' इन्द्रियाँ जिन विषयोंमें लगती हैं—**सर्वेषां इन्द्रियाणां धर्मान्**—शब्द-स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि—सबको छोड़कर। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज कहते थे—सात चीजें छोड़कर बैठो। ध्यान करने बैठना हो तो सात चीज छोड़ दो और जागते रहो। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख और दुःख। इन सातोंसे मुक्त होकर अपने स्वरूपमें बैठ जाओ। इसका नाम ध्यान है। किसके साथ बैठते हैं? शब्द, रूप, रस, गन्धके साथ बैठते हैं या इनको जाहिर करनेवाली इन्द्रियोंके साथ बैठते हैं। या इन्द्रियोंमें घूमनेवाली मनोवृत्तिके साथ बैठते हैं, नहीं—इनको घूमने दो और तुम जो सर्वान्तर्यामी परमात्मा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

सबके हृदय देशमें ईश्वरका निवास है। हमको क्या ढूँढे बन्दे हम तो तेरे पासमें। सबके हृदयमें परमेश्वर रहता है। इस धर्मके

बलसे ईश्वर मिलेगा। विषयोंका बल छोड़ दो। इन्द्रियोंका बल छोड़ दो। जो छूटे हुए हैं उनको छोड़ दो। जो अपनी आत्मा है वह तो कभी छूटता नहीं। छोड़ किसको सकता है ? जो अपनी आत्मा नहीं है और पकड़कर रखा हुआ है, उसको छोड़ सकता है।

छूटे हुए को ही छोड़ना होता है। उसको छोड़ना कैसे होता है ? छूटे हुए को छूटा हुआ समझ लेना—बस यही उसका छूटना है। तो परित्यज्यका अर्थ है—छूटे हुए को छोड़ना। जिनके बारेमें सोचते हो कि इन्होंने हमको पकड़ रखा है, जिनके बारेमें सोचते हो, इनको हमने पकड़ रखा है वह तो तुम्हारी पकड़ है। असलमें वे तो छूटे हुए हैं ऐसा समझना ही परित्याग करना है।

मामेकं शरणं व्रज। अपने हृदयके मन्दिरमें, **सर्वधर्मान् अनात्म-धर्मान् परित्यज्य मामेकं, आत्मानं शरणं सर्वाधिष्ठानं व्रज।** आजाओ, अपने पास आजाओ। **अहं त्वेन अभिव्यक्तं अहम्।** मैं के रूपमें प्रकट होते हो तुम। **सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**—अविद्या और अविद्याके कार्यसे मैं मुक्त कर देता हूँ। शोक और मोह स्वीकार करनेका कोई कारण नहीं है। **माम् आश्रित्य यतन्ते**—परमेश्वरका आश्रय लेकर, अपनी ओरसे प्रयत्न करो। श्रवण करो। स्वास्थ्यके लिए—आप चाहे जो आसन करें, उसका फल शरीरपर्यन्त ही है। आप प्राणायाम कीजिये, उल्टे टँग जाइये। शीर्षासन कीजिये। वह सब दूसरी चीज है। भगवान्का आश्रय दूसरी चीज है।

माम् आश्रित्य—भगवान्पर विश्वास, भगवान्का आश्रय, भगवान्की शरणागति और अपनी ओरसे प्रयास करना। कोई वस्तु स्वर्गादिके रूपमें नित्य परोक्ष हो, सिवाय श्रवणके उसके ज्ञानकी और कोई प्रणाली नहीं है। शास्त्रसे उसका श्रवण करना। वाक्य ही प्रमाण होता है स्वर्गके सम्बन्धमें। धर्मानुष्ठानके

साथ जो स्वर्गका सम्बन्ध है, उसके सम्बन्धमें आदि अन्ततक श्रद्धा—भावनाका प्राधान्य है। परमात्माके सम्बन्धमें—नित्य अपरोक्ष है—आत्माके रूपमें परमात्मा। परन्तु अज्ञात है। उस अज्ञानताको दूर करनेके लिए और ज्ञातता उत्पन्न करनेके लिए श्रवण करना चाहिए। श्रवण करनेके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

ईश्वरके बारेमें सुनिये, तब मनन होगा। ईश्वरके बारेमें सुनिये तब ध्यान होगा। ईश्वरके बारेमें सुनिये तब भजन होगा। ईश्वरके बारेमें सुनिये तब ईश्वरसे प्रेम होगा। लोग कैसे क्या सुनें? भगवान् अपनी ओरसे—सुननेकी सामग्री देते हैं। भागवत-में ऐसा आता है।

अपने दुर्गमतत्त्वको सर्वसाधारणके लिए सुगम करनेके लिए, भगवान् अवतार लेकर प्रकट होते हैं, शरीरधारी बनते हैं और ऐसे-ऐसे चरित्र करते हैं कि उन चरित्ररूपी अमृतोंके महासमुद्र बन जाते हैं। आप उसमें जरा उतरिये। उस चरित्रा-मृत-समुद्रमें अवगाहन कीजिये। स्नान कीजिये। डुबकी लगाइये। उसको पीजिये। उसको देखिये। यह भगवान्‌के चरित्रका अमृत महाम्बोधि है।

भगवान्‌के चरित्रमें—मजा आता है, रस आता है। भजन माने वेगार नहीं होती, पूरा कर दिया—टाल दिया, भजन माने रसास्वादन होता है। **भजनं नाम रसनं**। उपनिषन्‌ने कहा—भजन माने स्वाद लेना और रस आना। जब रस आने लगता है तब अर्थकी ओरसे रुचि हट जाती है। प्रेमका रस लेनेमें रुचि हो जाती है। जो नीरस होता है, वह रसिक हो जाता है। भगवान्‌के स्मरण, भजनमें—हर्र लगे न फिटकरी, रंग चोखा आवे। उसको ऐसा रस आता है कि न धनका बोझ सिरपर लेना

रहता है, न भोगोंकी पूर्तिके लिए प्यासा होना। न धर्मानुष्ठान करना है और न अपवर्गकी ही इच्छा रह जाती है।

अपवर्ग—माने निषेध—'नेति नेति।' महात्मा लोग कहते हैं नेति-नेति करनेकी कोई जरूरत नहीं है। आओ भगवद्रसका आस्वादन करो। भगवान्‌का रस लो, भगवान्‌का आनन्द लो। अपवर्जन करनेकी—'नेति-नेति'की कोई आवश्यकता नहीं है। कैसा है अपवर्ग—**अपगतो वर्गः** जिसमें पवर्ग भेद नहीं है। यह धनी है, यह गरीब है, यह धन है, यह भोग है, यह धर्म है, यह मोक्ष है। पवर्ग-रहित अवस्था है। उसमें कोई छोटा और बड़ा नहीं। **परमसाम्यमुपैति**—परम समताकी प्राप्ति होती है, उसको उपवर्ग बोलते हैं। अपगतवर्ग अपवर्ग अपवर्जन और अ'प' वर्गः जिसमें 'प' वर्ग नहीं है। पाप, पुण्य, फल, बन्धन, भोग, स्वर्ग-मोक्ष कुछ नहीं। यहाँ तो रसका समुद्र उमड़ रहा है। रसके कण उड़ रहे हैं। रसकी रश्मियाँ फैल रही हैं। रसकी वायु प्रवाहित हो रही है। **मधुः क्षरन्ति सिन्धवः**। सायंकाल मधु है। प्रातःकाल मधु है। रात्रि मधु है। दिन मधु है। मधु ही मधु—मधु ही मधु।

भजनमें न वर्ग-भेद है, न पाप-पुण्य, फल-बल, बन्ध, फल, मोक्ष है, पवर्ग कोई है ही नहीं। न इसमें 'नेति' है। यह तो प्रत्यक्ष भगवद्-रस है। इसका श्रवण करो। जितना-जितना श्रवण करेंगे उतना-उतना इस कानके रास्तेसे परमेश्वर हमारे हृदयमें प्रवेश करेगा। भगवान् नाकके रास्तेसे प्रविष्ट होगा—तुलसी सूँघनेसे—थोड़ा-सा भगवद्-संस्कार आयेगा। भगवान्‌का प्रसाद जीभसे लीजिये तो उससे भी थोड़ा-सा भगवद्-संस्कार आयेगा। आँखसे भगवान् की मूर्तिको, सत्पुरुषोंको देखिये, उससे भी थोड़ा संस्कार आयेगा। आप स्पर्श कीजिये—पण्ढरीनाथको। दोनों हाथसे पकड़कर अपने हृदयसे लगा लीजिये। इसका भी थोड़ा

संस्कार आयेगा। श्रवणसे शब्दके गरुड़पर भगवान् चढ़ते हैं और कानके रास्ते भक्तके हृदयमें पहुँच जाते हैं। श्रवण सर्वोपरि है। वेदान्तमें भी और भक्तिमें भी। **श्रवणं, कीर्तनं विष्णोः**—विष्णुका श्रवण कीजिये। कीर्तन कीजिये। **मन्तव्यो श्रोतव्य निदिध्यासितव्यः**—श्रवण कीजिये। संशय हो तो अनुकूल मनन, अनुकूल चिन्तन कीजिये। श्रुत और मत जो पदार्थ हैं, उसमें अपने मनको लगाइये। **यतन्ति ते ब्रह्म तद्विदुः**। उन्हें ब्रह्मज्ञान भी आता है, **कृत्स्नं अध्यात्मं**—वे सम्पूर्ण अध्यात्मको जान जाते हैं। **कर्म चाखिलम्**—वे समग्र कर्मको जान जाते हैं।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।

अधिभूत सहित, अधिदैव सहित, अधियज्ञ सहित परमात्माको पहचान लो। इन शब्दोंका अर्थ ८ वें अध्यायके प्रारम्भमें है। अर्जुनने प्रश्न किया है—ब्रह्मज्ञान क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है ? दैव क्या है ? अधिभूत क्या है ? अधियज्ञ क्या है ? भगवान्ने उसका उत्तर दिया है। आप थोड़ा-सा ध्यान दें। परमेश्वरको समग्र रूपसे जानना। सातवें अध्यायके प्रारम्भमें यह बात कही गयी।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।७.१

भगवान्का ही भरोसा, भगवान्से ही प्रेम और अपने साधनमें लगन—तत्परता। साधन करते रहो—प्रेम भी भगवान्से और आश्रय भी भगवान्का। इससे फल क्या निकलेगा ?

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।

समग्र परमेश्वरका ज्ञान होता है। यह भागवत-धर्मकी विशेषता है। आत्माकी समग्रताका ज्ञान यह कश्मीरी शैव दर्शन है। अपनी आत्मा ही तरंगायमान हो रहा है। सम्पूर्ण विश्वके

रूपमें और भगवान् ही अनेकरूप धारण करके विलास कर रहे हैं जगत्के रूपमें। यह भागवत-सिद्धान्त है।

भागवत-सिद्धान्त तत्-पदार्थकी ओरसे आता है और शैव-सिद्धान्त आत्मपदार्थकी ओरसे आता है। वेदान्त यहाँ आत्माकी आत्मा और वहाँ भगवान्की आत्मा दोनोंको एक बताता है। उसमें आत्मा और भगवान्का कोई भेद नहीं है। ये दोनों सिद्धान्त यह बताते हैं कि परमात्मा समग्र है। समग्र माने वही अधिभूत है, वही अधिदैव है, वही अध्यात्म है, वही अधियज्ञ है, वही कर्म है और वही ब्रह्म। यह वेदान्त है। **ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।** जान लीजिये—समझ लीजिये कि सबके रूपमें परमेश्वर है। अपनी आत्मा ही सबके रूपमें है। **आत्मैवेदं सर्वम् स एवेदं सर्वम्।** सबके रूपमें परमेश्वर है। देखो सबके रूपमें परमेश्वर, यह भागवत-सिद्धान्तकी विशेषता है। जो योग करते हैं, समाधि लगाते हैं, उनको समाधि-कालमें परमात्माका दर्शन होता है।

भागवत-धर्मका यह कहना है—आप जहाँ हैं वहीं—कहीं हटने-उठनेकी जरूरत नहीं—और जो देख रहे हैं, उसीमें यह समग्र भगवान्का ज्ञान है। आप समग्ररूपसे परमेश्वरको पहचानिये। सम्पूर्ण भूतोंमें आप भगवद्भाव कीजिये। सबमें भगवान्। मोरमें बैठकर परमेश्वर नाच रहा है। कोयलमें बैठकर वह कूहू-कूहू बोल रहा है। हमने देखा है वृक्षोंमें वह फूलता है। ओह! क्या फूलता है। फलके रूपमें वृक्षोंमें-से वही निकलता है। सुन्दर-सुन्दर मछलियोंके रूपमें वही नाचता है पानीमें। बूँद-बूँद पानी बनके वह छलकता है। **परमेश्वरः सर्वभूतेषु।** वही स्त्रीके रूपमें है। वही पुरुषके रूपमें है। वही कण-कणके रूपमें है। क्षण-क्षणके रूपमें वही है। मन मनके रूपमें वही है। तन तनके रूपमें वही है। आप सभी वस्तुओंमें—भवन्ति इति

भूतानि सर्वंभूतेषु परमात्माका अनुभव कीजिये। इससे क्या मिलेगा ? यह मिलनेवाली बात पीछा नहीं छोड़ती है। कुछ न कुछ फायदा होना चाहिए। एक फायदा तो बिलकुल प्रत्यक्ष है कि जिस समय आप-कण कणमें भगवान्‌का दर्शन करने लगेंगे—भावना होगी तो थोड़े ही दिनोंमें आपके हृदयमें किसीसे स्पर्धा नहीं रहेगी।

भागवतमें आया है कि स्पर्धा दिलको टूक-टूक कर देती है। आपके मनमें असूया आती है ? यह असूया बिलकुल बाँट देती है। यह असूया है—दूसरेके कर्ममें गुण-दोष निकालना। कोई सन्ध्या-वन्दन कर रहा है, माला-फेर रहा है। बढ़िया काम कर रहा है। बोले अरे! दिखानेके लिए कर रहा है। कोई अच्छा काम कर रहा है और आप उसमें खुचर निकाल रहे हैं। इसका नाम होता हैं असूया। यह हमारे हृदयमें होड़ लगाना होता है। हमारे हृदयमें दूसरोंके दोष देखनेकी वृत्ति रहती है। हम दूसरेका तिरस्कार करते हैं—और हमारे शरीरके प्रति, शरीर सम्बन्धियोंके प्रति, वस्तुओंके प्रति, विद्याके प्रति, बुद्धिके प्रति अहंकार धारण करते हैं। भागवत-धर्मका यह स्वरूप है कि उसमें किसी प्रकारका अहंकार नहीं है। बल्कि अहंकारीके बारेमें तो भागवतमें ऐसा-बोलते हैं—सब भगवान्‌को पा सकते हैं—क्योंकि सबकी आत्मा भगवान् है, सबमें भगवान् हैं, सब समय भगवान् है, सब स्थानमें भगवान्‌को देख सकते हैं, परन्तु भगवान्‌के देखनेमें परदा क्या पड़ता है ? वे लोग भगवान्‌का नाम भी लेनेके अधिकारी नहीं हैं—कौन ? जिसको अपनी जाति, जन्मका अभिमान, जिसको अपनी कुरसी, ऐश्वर्य, हुकूमत, विद्या, धनका अभिमान है, जिसका नशा छा जाता है। इससे नशा बँट जाता है, तब वह परमात्माका नाम लेनेका भी अधिकारी, हकदार नहीं होता है।

इसलिए जब हम सबमें भगवान्‌को देखने लगते हैं तो स्पर्धा,

असूया, तिरस्कार और अहंकारकी निवृत्ति हो जाती है। एक सहज जीवनकी प्राप्ति होती है। पराश्रित जीवन नहीं रहता। दुःखमय जीवन नहीं रहता। अज्ञानमय जीवन नहीं रहता। मृत्युके भयवाला जीवन नहीं रहता। एक दिव्य जीवनकी प्राप्ति होती है—जब हमारे जीवनमें सर्वत्र भगवान्‌का दर्शन—भगवान्‌के दर्शनका आनन्द आने लगता है। इसलिए कि वह ज्ञान है। अधिदेव भी भगवान्‌का स्वरूप है। अधिभूत कहते हैं—पृथिवी, जल, वायु, अग्नि आदिको। सूर्य, चन्द्र इत्यादि अधिदैव हैं। और जो भी कर्म हो रहा है शरीरसे नयी-नयी चीजें जिससे पैदा होती हैं और वह ब्रह्म जो सबकी आत्मा है, ये सब अधियज्ञ हैं। जो सबके हृदयमें रहकर केवल यज्ञ कर रहा है। लो दृष्टिशक्ति देखो आँखसे। लो कान—श्रवणशक्ति, सुनो। लो त्वचा—स्पर्श करो। लो जीभ—इससे रसास्वादन करो। लो नासिका, इससे गन्ध सूँघो। लो शरीर, इससे धर्मानुष्ठान करो। लो अन्तःकरण, इससे उत्तम-उत्तम विचार करो। परमात्मा हमेशा यज्ञ करता रहता है। वह स्वयं यज्ञरूप है। जैसे सूर्य यज्ञ कर रहा है—सबको रोशनी दे रहा है। जैसे चन्द्रमा यज्ञ कर रहा है—सबको आह्लाद दे रहा है। हम एक दूसरेको कुछ-न-कुछ दें। दूसरेको समझें कि जो मेरे अन्दर है वही इसके अन्दर है और किसीकी हिंसा न करें। किसीको दुःख न पहुँचावें। हम लोगोंका फिर मिलन हो, एक दूसरेको पहचानें, एक दूसरेको कुछ दें। एक दूसरेको नुकसान न पहुँचावें। क्योंकि यह यज्ञ-स्वरूप जो परमात्मा है—वह सब जगह बैठकर कुछ-न-कुछ, कुछ-न-कुछ यज्ञ-कर रहा है। दे रहा है।

सर्वंभूतेषु मद्भावं ब्रह्म—अध्यात्म, कर्म, भूत, अधिदैव और अधियज्ञ—ये सबके रूपमें कौन है? परमेश्वर—इस परमेश्वरको जान लो, तब—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

आठवें अध्यायका—

> अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
> तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥८.१४

आपका चित्त अनन्य हो जायगा । अब आप भगवान्‌के प्रति अनन्य हो जायेंगे । जो आपके सम्मुख आता है, जो दीखता है, उसमें भगवान्‌को देखो और यह कब देखना होगा, जब आप भगवान्‌के बारेमें श्रवण करेंगे । यह हमारी जो श्रुति है—कान है—श्रवण है—श्रवण ही हमारे मनको मार्ग दिखाता है । हमारे हृदयमें परिवर्तन करता है ।

आप लोगोंने बड़े प्रेमसे, बड़ी शान्तिसे, बड़ी लगनसे श्रवण किया और हमको बोलनेका मौका दिया । आपकी बात तो आप जानें, हमको सचमुच भगवद्स्वरूप, भगवद्तत्त्व, भगवद्रहस्य, भगवद्चरित—भगवद्गुणानुवाद और भगवद्वाणी—इनके बोलनेमें जो आनन्द प्राप्त होता है, उसके कारण मैं बोलता हूँ—वह आनन्द ही हमसे बुलवाता है । यदि वह आनन्द नहीं हो तो हम बोल नहीं सकते । इस आनन्दके निमित्त आप लोग बनते हैं । भगवान् आप लोगोंको इस बोलनेका निमित्त बनाता है । आपके भीतर वही प्रभु बैठा हुआ है, जो यहाँ बैठकर बोलनेकी शक्ति देता है और वहाँ बैठकर बोलनेकी प्रेरणा देता है । वे दोनों दो नहीं हैं, बिलकुल एक हैं । इसलिए न तो कोई कृतघ्नता है, न तो कोई आभार है, न कोई धन्यवाद है—बस जो भगवान् कर रहे हैं उसमें आनन्द ही आनन्द है ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

●

❀ सत्साहित्य पढ़िये ❀

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी
अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज
द्वारा विरचित
एवं
संस्था द्वारा प्रकाशित
अनुपम आध्यात्मिक साहित्य

३०

२